ओ३म्

नित्य वैदिक कर्म विधि

सम्पादक –
विद्यावाचस्पति वेदपाल वर्मा शास्त्री
मालदा बाग , शाहपुर
मुजफ्फरनगर –२५१३१८
दूरभाष : ०१३९२–२५५५३३
०९६२७५७५७७७

सौजन्य से –
इं. राजीव वर्मा
"वेद भवन"
आर–१२४, महर्षि दयानन्द मार्ग,
पल्लवपुरम्–भाग–२, मेरठ–२५०११०
मो० : ९४१०२७६६०६

अक्टूबर २०११

मूल्य : यज्ञ करना–कराना
पढ़ना–पढ़ाना
वेद प्रचार–प्रसार करना

वेद में प्रतिमा पूजन का कहीं भी विधान नहीं।

– महर्षि दयानन्द सरस्वती

पुस्तक प्राप्ति स्थान

वीरेश वर्मा

"वेद भवन"

आर–१२४, महर्षि दयानन्द मार्ग, पल्लवपुरम, फेज़–२,
मेरठ–२५०११०, दूरभाष : ०१२१–२५७७६२२

अभय चौहान

पुत्र चौ० चन्द्रवीर चौहान (एडवोकेट, पूर्व उपाध्यक्ष, टाउन एरिया कमेटी, शाहपुर)

"ओ३म् भवन" मालदा बाग, पुरानी गुड मण्डी, शाहपुर,
जि० मुजफ्फरनगर–२५१३१८ दूरभाष : ०१३९२–२५५५३३

कु० प्रज्ञा चौधरी

पुत्री इं. देवराज वर्मा

२६४, एस.एफ.एस. सैक्टर–११, रोहिणी (गोल्डन जुबली एपार्टमेन्ट)
दिल्ली–८५, सम्पर्क सूत्र : ०९८११७०८२६२

चौ० ऋषिपाल बालियान

(पौत्र चौ० राजसिंह नम्बरदार, पुत्र स्व० हृदयरामजी, पूर्व प्रमुख)

रसूलपुर जाटान, वाया शाहपुर, मुजफ्फरनगर।

रणवीर सिंह चौधरी

(पूर्व प्रधानाचार्य, जनता वैदिक इण्टर कॉलेज)

मधुबन कॉलोनी, बड़ौत, जि० बागपत।
सम्पर्क सूत्र : ०९४११९६७८४४

विशेष : ***चौ० सूबा सिंह*** बूढ़पुर तथा ***चौ० मीर सिंह जी नम्बरदार*** किरठल ने सन् १८७६ में महर्षि दयानन्द का प्रवचन मेरठ में सुनकर गुरूकुल किरठल स्थापित किया दोनों ने अपने पुत्र तथा भतीजों, पौत्रों को गुरूकुल में प्रवेश दिलाया था।

ओ३म्

स्व० श्रीमती हुकम कौर जी की पुण्य स्मृति में नित्य वैदिक कर्म विधि

आर्य महाविद्यालय गुरूकुल, किरठल, मेरठ के संस्थापक स्व० हरज्ञान सिंह जी व चौ० मीर सिंह जी नम्बरदार की पुत्र–वधु स्व० श्रीमती हुकमकौर पत्नी स्व० श्री गिरिवर सिंह जी "भूषण" (स्वामी ओ३मानन्द जी से संन्यास दीक्षा प्राप्त) मु० मो० किरठल मेरठ की पावन स्मृति में पौत्र इं०राजीव वर्मा (पुत्र पूर्व प्रवक्ता श्री वेदपाल वर्मा जी शास्त्री) की ओर से "**नित्य वैदिक कर्म विधि**" आर्य जनों को सादर समर्पित है।

मेरी पूज्य दादी जी का जन्म मुज्फ्फरनगर जनपद के ग्राम रसूलपुर जाटान में नम्बरदार राजसिंह जी के चौधरी परिवार में हुआ था और स्वर्गवास २५ जुलाई १९८५ को आर्य हवेली किरठल में। पूज्य दादी का जीवन वैदिक आर्य परम्पराओं में बीता। जब–जब गुरुकुल में वार्षिकोत्सव, श्रावणी पर्व, दयानन्द बोधोत्सव (शिवरात्री), पं० लेखराम बलिदान दिवस आदि मनाये जाते, तब–तब मेरी दादी जी महिलाओं को इकट्ठा करके उत्सवों में भाग लेती थीं । अपने पुत्र श्री वेदपाल वर्मा शास्त्री द्वारा संन्यासियों–विद्वानों जैसे स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ, स्वामी स्वतंत्रानन्द जी सरस्वती, पं. रामचन्द जी देहलवी, पं० उदयवीर जी शास्त्री, पं० धर्मदेव विद्या मार्तण्ड, आचार्य प्रियव्रत जी कुलपति विश्वविद्यालय गुरुकुल, कांगड़ी, स्वामी ओ३मानन्द जी गुरुकुल झज्जर, स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती, पं० जगदेव

शास्त्री सिद्धान्ती तथा पं० पूर्णचन्द्र जी आर्योपदेशक (बूढ़पुर) को सम्मान पूर्वक भोजन खिलाने के बाद एक एक चाँदी के सिक्के से भी सम्मानित करती थीं।

पंच महायज्ञ उनका जीवन था। परोपकार एवं निर्धन सेवा उनके पवित्र तीर्थ थे। मेरी दादी जीने उल्लिखित विद्वान् अतिथियों से यह भी जान लिया था कि मनुष्य की आत्मा और परमात्मा के बीच अज्ञान और आलस्य वश जो सन्धि–विच्छेद हो जाता है, उसे भरने के लिये नित्यप्रति–प्रातः सायं सन्धि वेला में परमात्मा की स्तुति करनी चाहिये। यही ब्रह्मयज्ञ है यही सन्ध्या है। इसी सन्धि और सन्ध्या से जीवात्मा मोक्ष की पगडण्डी ग्रहणकर लेता है। पञ्चमहायज्ञों में ब्रह्म यज्ञ सर्वप्रथम और श्रेष्ठ यज्ञ है। यहां आत्मा को परमात्मा का अनुभव होने लगता है। यही पुरूषार्थ चतुष्टय (धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष) का अन्तिम ध्येय मार्ग है। इसी ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्या) के निर्मल जल में मन–वाणी और कर्मों को शुद्धकर, देव–यज्ञ (हवन) करने से ईश्वरामृत का मार्ग खुल जाता है। "ओ३म् ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरो३म् स्वाहा"। ब्रह्मयज्ञ और देवयज्ञ दोनों अमरपद हैं, भूः भुवः स्वः ये तीनों व्याहृतियां परमेश्वर का खजाना हैं, जिन्हें ईश्वर ने ब्रह्माण्ड में वनस्पति, लता, औषधि, वन, वृक्ष, घृत, दुग्घादि भोज्य पदार्थो, पर्वत, जल, वायु और आकाशादि, नदी, जलाशयों में सर्वत्र बिखेर रक्खा है। आओ वेद ऋचाओं (मंत्रों) के माध्यम से सन्धि वेला के इस खजाने को पाकर अपनी सन्तानों को संस्कारवान् बनायें। जिससे उनका जीवन शुद्ध और पवित्र हो। उनमें राष्ट्रभक्ति, राष्ट्र संस्कृति की रक्षा का भार जागरूक रहे। इसी पवित्र एकता के सन्ध्या सूत्र से बन्धे रहना मनुष्यमात्र का धर्म है।

इं. राजीव वर्मा

"वेद भवन"

आर-१२४, महर्षि दयानन्द मार्ग,

पल्लवपुरम–भाग–२ मेरठ–२५०११०

दूरभाष :-०१२१/२५७७६२२,६४१०२७६६०६

देवेन्द्रपाल वर्मा
प्रधान
आर्य प्रतिनिधि सभा, उ०प्र०
५—मीराबाई मार्ग, लखनऊ—२२६००१
दूरभाष : ०६४१२६७६४७१

आचार्य वेदपाल वर्मा शास्त्री तथा उनके पुत्र इ. राजीव वर्मा ने नित्यवैदिक कर्मविधि नामक संध्या और यज्ञ की विशेष सरल पुस्तक तैयार की है। मैंने इसे देखा प्रसन्नता हुई। क्योंकि पूर्व लिखित किसी भी संध्या की पुस्तक में ऋत्विक्, पुरोहित, अध्वर्यु, उद्गाता, ऋचा, सामिधेनी आदि यज्ञ में प्रयुक्त शब्दों का सरलार्थ नहीं दिया गया। इस पुस्तक में यज्ञ सम्बन्धी सभी शब्दों का सरलार्थ दिया है। जिससे सभी संध्या हवन की विधि को सरलता से समझ लेंगे और यज्ञ के प्रति सबकी श्रद्धा बढ़ेगी। मैं अपनी ओर से तथा आर्य प्रतिनिधि सभा, लखनऊ की ओर से इस वैदिक परिवार का पुस्तक सहित धन्यवाद करता हूँ।

—देवेन्द्रपाल वर्मा

ऋतु–अनुकूल हवन–सामग्री

(१) हरड़, (२) बहेड़ा, (३) आँवला, (४) गिलोय, (५) तुलसी, (६) चन्दन–चूर्ण, (७) अगर, (८) तगर, (९) गुग्गुलु, (१०) जायफल, (११) जावित्री, (१२) लौंग, (१३) गोला (पका हुआ नारियल), (१४) छुहारा, (१५) यव (जौ), (१६) नागरमोथा, (१७) कपूरकचरी, (१८) किशमिश, (१९) बालछड़, (२०) तुम्बुरु, (२१) सुपारी, (२२) नीम–पत्र, (२३) राल, (२४) इन्द्रजौ, (२५) चावल, (२६) जटामाँसी, (२७) उड़द, (२८) मूँग, (२९) कपूर, (३०) गुड़–शक्कर, बूरा या खाँड, (३१) गुलाब के फूल, (३२) गेंदे के फूल, (३३) देशी घी (गौघृत)

यज्ञ की वस्तुएँ

(१) देशी घी=२५० ग्राम, (२) हवन सामग्री=५०० ग्राम, (३) समिधा (आम, ढाक या पीपल की सूखी लकड़ी) ढाई किलो, (४) कपूर, (५) रुई, (६) दियासलाई, (७) रोली, हल्दी, चन्दन या केसर, (८) चावल, (९) फूल, (१०) यज्ञोपवीत, (११) हवनकुण्ड, (१२) दीपक, (१३) पात्र (कटोरी=४, घी का पात्र, चम्मच=४, बड़ी चम्मच=१, लोटा=१, तश्तरी=४।

विवाह–संस्कार की सामग्री

(१) देशी घी=५०० ग्राम, (२) हवन–सामग्री=१ किलो, (३) समिधा=५ किलो, (४) कपूर, (५) रुई, (६) यज्ञोपवीत, (७) रोली या केसर, (८) सिन्दूर, (९) चावल, (१०) फूल=२५० ग्राम, (११) खील=२५० ग्राम, (१२) दही=१०० ग्राम, (१३) मधु (शहद), (१४) पत्थर (शिला), (१५) घड़ा , (१६) आम की डाली , (१७) नारियल, (१८) दियासलाई, (१९) दो तौलिये, (२०) दो आसन,(२१) बड़ी फूलमाला=४, (२२) हवनकुण्ड (बड़ा) (२३) दीपक, (२४) मिष्टान्न, (२५) पात्र, (कटोरी=६, गिलास=४ लोटा=१, थाली=३, घी का पात्र, बड़ा चम्मच, तश्तरी=४

विषय सूची

ईश प्रार्थना–गुरूकुल छात्रों की प्रार्थना	१
प्रातः कालीन प्रार्थना मंत्र	२–४
ब्रह्मयज्ञ (वैदिक सन्ध्या)	५–२२
ऋत्विक् वरणम्	२३
देवयज्ञ (अग्निहोत्र) विधि– आचमन मंत्र	२३–२५
यज्ञोपवीत मंत्र	२५
अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनामंत्र	२६–३१
स्वस्ति वाचन	३२–५२
अथ शान्तिकरणम्	५२–६६
अग्न्याधान मंत्र–अग्नि प्रदीपन मंत्र	६६–७१
समिधाधान मंत्र	७१–७३
पंचघृताहुति मंत्र	७४–८६
जल सेचन मंत्र–आधाराज्याहुति मंत्र–आज्यभागाहुति मंत्र	
प्रातःकाल, सायंकाल की आहुतियाँ	७५–७८
विशेष यज्ञ की आहुति	७८–८७
पूर्णाहुति–तेज प्रार्थना	८७–८८
श्रद्धा पूर्वक शेष घृताहुति की धारा उड़ेलते हुए।	
यजमान को आशीर्वाद–राष्ट्रीय प्रार्थना	८८–८६
संगठन सूक्त	८६–६०
शान्ति पाठ–अमावस्या की आहुति–	६०
पूर्णमासी की आहुति	६०
तृतीय पितृयज्ञ	६१
चतुर्थ बलिवैश्वदेवयज्ञ विधि	६१–६४

पंचम अतिथि यज्ञ–पंचमहायज्ञों का सार ६४
संकल्प मंत्र ६५
भोजन के समय पूर्व व बाद का मत्र ६५
वामदेव गान प्रतिएक यज्ञ के बाद, मंगल कामना ६६
आचमन तीन। पूर्णआहुति भी तीन। यजमान को आशीर्वाद भी तीन। सामग्री के चार प्रकार।
किस कर्म या लाभ के लिए किस हवि द्रव्य का प्रयोग करना चाहिये? ६७–६८
यजिय वृक्ष और समिधाओं के गुण ६८–६६
विशेष :– यजमान के व्रत तथा अध्वर्यु, होता, उद्गाता, ब्रह्मा की विशेषताएं। ६६
यज्ञ के मुख्य रूप से ५ पद होते हैं। ६६
भजन १००–१०८
आचार्य और यज्ञ में उपस्थित पुरूषों का समन्वित
आशीर्वाद १०६
बालक को आशीर्वाद तथा वैदिक उद्घोष ११०

ब्रह्मयज्ञ सन्ध्या–देवयज्ञ अग्निहोत्र तथान्य यज्ञ सम्बन्धित गूढार्थों, विषयों की जानकारी के लिये नीचे (दी पड़ी मोटी रेखा के नीचे) वेद के सन्दर्भों को बड़े स्थिर ध्यान से देखिये–समझिये–विचारिये।

ईश प्रार्थना

याचे शुभ शान्तिनिधानम्—याचे शुभ।
जननं निधनं धर्महितार्थम्
भगवन् तनुधनधान्यम्—याचे शुभ।
धीर वीर साहस संज्ञानम्
जन्मभूमि सन्तानम्—याचे शुभ।
भुक्तिर्मुक्तिर्देशोऽयं मे,
देहि प्रभो वरदानम्—याचे शुभ।
देशधर्मसेवीभूयासम्,
पूरय प्रण पन्थानम्—याचे शुभ।
शान्ति निधानम्।

गुरुकुल छात्रों की प्रार्थना

हम धीर हैं, वीर हैं जन्मभूमि की सन्तान हैं, देश—धर्म की सेवा का वरदान चाहते हैं, हमारा जन्म—मरण देशकी रक्षा और शिक्षा जागरण के लिये हो। हमारा ज्ञान उत्तम हो।

रचनाकार :

आर्य महाविद्यालय
किरठल, मेरठ

केदारनाथ सारस्वत
आचार्यः

प्रातःकालीन प्रार्थना मन्त्राः

ओ३म् प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातःसोममुत रुद्रं हुवेम।।

ऋ० म० ७। सू० ४१। मं० १

अर्थ – हे स्त्री पुरूषो ! जैसे हम विद्वान् उपदेशक लोग (प्रातः) प्रभातवेला में (अग्निम्) स्वप्रकाशस्वरूप (प्रातः) (इन्द्रम्) परमैश्वर्य के दाता और परमैश्वर्य युक्त (प्रातः) (मित्रावरुणा) प्राण, उदान के समान प्रिय और सर्वशक्तिमान (प्रातः) प्रभात वेला में (अश्विना)ी सूर्य, चन्द्र को जिसने उत्पन्न किया है, उस परमात्मा की (हवामहे) स्तुति करते हैं; और (प्रातः) प्रभात वेला में (भगम्) भजनीय, सेवनीय, ऐश्वर्ययुक्त (पूषणम्) पुष्टिकर्त्ता (ब्रह्मणस्पतिम्) अपने उपासक, वेद और ब्रह्माण्ड के पालन करने हारे, (प्रातः) (सोमम्) अन्तर्यामी, प्रेरक (उत) और (रुद्रम्) पापियों को रुलाने हारे और सर्व रोगनाशक जगदीश्वर की (हुवेम) स्तुति, प्रार्थना करते हैं।।१।।

ओ३म् प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह।।

ऋ० ७–४१–२

अर्थ – (प्रातः) पांच घड़ी रात्रि रहे (जितम्) जयशील (भगम्) ऐश्वर्य के दाता (उग्रम्) तेजस्वी (अदितेः) अन्तरिक्ष के (पुत्रम्) पुत्ररूप सूर्य की उत्पति करने हारे; और (यः) जो कि सूर्यादि लोकों का (विधर्त्ता) विशेष करके धारण करने हारा, (आध्रः) सब ओर से धारणकर्त्ता (यं, चित्) जिस किसी का भी (मन्यमानः) जानने हारा (तुरश्चित्) दुष्टों का भी दण्ड–दाता और (राजा) सबका प्रकाशक है (यम्) जिस (भगम्) भजनीय स्वरूप को (चित्) भी (भक्षीति) इस प्रकार सेवन करता हूँ, और

'ओ३म्' यह परमेश्वर का पवित्र-प्यारा नाम है। हे यजमान !ओ३म् के जाप से प्रतिष्ठा पा। **[ओ३म प्रतिष्ठा यजु० २-२३]**

इसी प्रकार भगवान परमेश्वर सबको (आह) उपदेश करता है कि तुम जो मैं सूर्यादि जगत् का बनाने और धारण हरने हारा हूँ उस मेरी उपासना किया करो और मेरी आज्ञा में चला करो, इससे (वयम्) हम लोग उसकी (हुवेम) स्तुति करते है ॥२॥

ओ३म् भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्रणो जनय गोभिरश्वैर्भग प्रनृभिर्नृवन्तः स्याम।।

ऋ० ७–४१–३

अर्थ – हे (भग) भजनीयस्वरूप (प्रणेतः) सबके उत्पादक सत्याचार में प्रेरक (भग) ऐश्वर्यप्रद (सत्यराधः) सत्य धन को, देनहारे (भग) सत्याचरण करने हारों के ऐश्वर्यदाता आप परमेश्वर! (नः) हमको (इमाम्) इस (धियम्) प्रज्ञा को (ददत्) दीजिए। और उसके दान से हमारी (उदवा) रक्षा कीजिए। (भग) आप (गोभिः) गाय आदि और (अश्वैः) घोड़े आदि उत्तम पशुओं के योग से राज्यश्री को (नः) हमारे लिए (प्रजनय) प्रगट कीजिये। (भग) आपकी कृपा से हम लोग (नृभिः) उत्तम मनुष्यों से (नृवन्तः) बहुत वीर मनुष्य वाले (प्र, स्याम) होवें ॥३॥

ओ३म् उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम।।

ऋ० ७–४१–४

अर्थ – हे भगवन् ! आप की कृपा (उत) और अपने पुरुषार्थ से हम लोग (इदानीम्) इसी समय (प्र पित्वे) प्रकर्षता उत्तमता की प्राप्ति में (उत) और (अह्नाम्) इन दिनों के (मध्ये) मध्य में (भगवन्तः) ऐश्वर्ययुक्त और शक्तिमान् (स्याम) होवें (उत) और हे (मधवन्) परम पूजित असंख्य धन देने हारे ! (सूर्यस्य) सूर्यलोक के (उदिता) उदय में (देवानाम्) पूर्ण विद्वान धार्मिकआप्त लोगों की (सुमतौ) उत्तमप्रज्ञा रूप सुमति में (वयम्) हम लोग (स्याम) सदा प्रवृत्त रहें ॥४॥

ओ३म् का अर्थ है :- यः अवति सकलं जगत् - जो सकल जगत् की रक्षा करता है :- **[यजु० ४०-१७ (महर्षि दयानन्द भाष्य)]**

ओ३म् भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एताभवेह।।

ऋ० ७–४१–५

अर्थ – हे (भग) सकलैश्वर्य सम्पन्न जगदीश्वर! आपकी (तम्) उस (त्वा) सब सज्जन (इज्जोहवीति) निश्चय करके प्रशंसा करते हैं (सः) सो आप, हे (भग) ऐश्वर्यप्रद! (इह) इस संसार और (नः) हमारे गृहाश्रम में (पुर एता) अग्रगामी और आगे आगे सत्यकर्मों में बढ़ाने हारे (भव) हूजिए। और जिससे (भग एव) समस्त ऐश्वर्यों के दाता होने से आप ही हमारे (भगवान) पूजनीय देव (अस्तु) हूजिए। (तेन) उसी हेतु से (देवः, वयम्) हम विद्वान् लोग (भगवन्तः) सकल ऐश्वर्य सम्पन्न होके सब संसार के उपकार में तन, मन, धन से प्रवृत्त (स्याम) होवें ॥५॥

ब्रह्म यज्ञ (वैदिक सन्ध्या)

अथ गायत्री–मन्त्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

ऋ० मण्डल ३ सूक्त ६२ मन्त्र १० (इस मंत्र से शिखा बान्धें)

शब्दार्थ –***ओ३म्*** – *यह ईश्वर का मुख्य और सर्वोत्तम नाम है। इसका अर्थ है– सबकी रक्षा करने वाला। यह शब्द 'अ' 'उ' तथा 'म्' के संयोग से बना है। 'अ' के अर्थ हैं– विराट्, अग्नि, विश्व आदि। 'उ' के अर्थ हैं– हिरण्यगर्भ, वायु, तेजस् आदि और 'म्' के अर्थ हैं– ईश्वर, आदित्य, प्राज्ञ आदि। इस प्रकार 'ओम्' नाम से ईश्वर के सब नामों का ग्रहण हो जाता है।* ***भूः*** *– प्राणाधार, प्राणों से भी प्यारा,* ***भुवः*** *– सब प्रकार के दुःखों का नाश करने वाला,* ***स्वः*** *– स्वयं सुख स्वरूप और सुख देने वाला,* ***तत्*** *– उस,* ***सवितुः*** *– समस्त संसार को उत्पन्न करने वाले,* ***वरेण्यम्*** *– ग्रहण करने योग्य, अति श्रेष्ठ,* ***भर्गः*** *– शुद्ध स्वरूप,* ***देवस्य*** *– ईश्वर का,* ***धीमहि*** *–ध्यान करें,* ***धियः*** *– बुद्धियों को,* ***यः*** *– जो पूर्वोक्त ईश्वर है वह,* ***नः*** *– हमारी,* ***प्रचोदयात्*** *– शुभ–कर्मों में प्रेरित करे।*

भावार्थ – हे सबके रक्षक ईश्वर ! आप सबके प्राणाधार हो, अतः प्राणों से प्रिय हो। आप दुःखों को दूर करके सुख देते हो। यह चराचर सारा संसार आपने ही बनाया है। हम आपके ग्रहण करने योग्य, अति श्रेष्ठ, शुद्ध स्वरूप का ध्यान करते हैं। आप हमारी बुद्धियों को शुभ कर्म करने के लिए प्रेरित करो।

ब्रह्मयज्ञ (संध्या) पापों का नाश करने वाला यज्ञ है। [तै०ब्रा० २-१५]

ब्रह्मयज्ञ परलोक सुख की प्रप्ति का मार्ग है [ऋक्० १०-९०-२१ / यजु० -३१-२५]

गीत

तूने हमें उत्पन्न किया पालन कर रहा है तू।
तुझसे ही पाते प्राण हम दुखियों के कष्ट हरता है तू॥
तेरा महान् तेज है छाया हुआ सभी स्थान।
सृष्टि की वस्तु–वस्तु में तू हो रहा है विद्यमान॥
तेरा ही धरते ध्यान हम प्रभु मांगते तेरी दया।
ईश्वर ! हमारी बुद्धि को श्रेष्ठ मार्ग पर चला॥

अथाचमन मन्त्र

निम्नलिखित मन्त्र का एक बार उच्चारण करके दायीं हथेली में जल लेकर तीन आचमन करें (जल को पीयें)। जल की मात्रा इतनी हो कि एक आचमन से हृदय तक जल चला जायें। आचमन कण्ठस्थ कफ और पित्त को दूर करता है। यदि जल न हो तो भी सन्ध्या अवश्य करें।

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये।
शँयोरभिस्रवन्तु नः ॥ यजु० अ० ३६, मंत्र १२

शब्दार्थ –*शम्* – *शान्ति दायक,* ***नः*** – *हमारे लिए,* ***देवीः*** – *दिव्य गुण सम्पन्न,* ***अभिष्टये*** – *मनःकामना पूर्ण करने के लिए,* ***आपः*** – *हे सर्व व्यापक प्रभो !,* ***भवन्तु*** – *हो जाओ,* ***पीतये*** – *परम शान्ति का पान कराने के लिए,* ***शंयोः*** – *शान्ति और कल्याण की,* ***अभि*** – *चारों ओर से,* ***नः*** – *हम पर* ***स्रवन्तु*** – *वर्षा करो।*

भावार्थ – हे दिव्य गुण वाले, सर्वव्यापक प्रभो ! आप हमारी मनःकामनायें पूर्ण करके, परम आनन्द प्रदान करो और हमारे ऊपर चारों ओर से सुख और शान्ति की वर्षा करो।

देवयज्ञ - (अग्निहोत्र-हवन) में जिन वेद के विद्वानों का वरण [चुनाव] किया जाता है, उन्हें ऋत्विक् कहते हैं [महर्षि याज्ञवल्क्य
महर्षि दयानन्द सरस्वती]

अथ अङ्गस्पर्श मन्त्र

निम्न मन्त्रों का उच्चारण करते हुए बायीं हथेली में जल लेकर दाहिने हाथ की दो बीच की अंगुलियों–मध्यमा और अनामिका से जल का स्पर्श करके अपने अंङ्गों का स्पर्श करें–

ओ३म् वाक् वाक्।	इस मन्त्र से मुख का दायें और बायें।
ओ३म् प्राणः प्राणः। यजु०	इससे नाक के दायें और फिर बायें।
ओ३म् चक्षुश्चक्षुः।	इससे दायीं और फिर बायीं आँख।
ओ३म् श्रोत्रं श्रोत्रम्।१८–२–	इससे दायें और फिर बायें कान का।
ओ३म् नाभिः।	इससे नाभि।
ओ३म् हृदयम्।	इससे हृदय। यजु० १८–५४–५५
ओ३म् कण्ठः।	इससे कण्ठ। यजु० ३६–६
ओ३म् शिरः।	इससे सिर। यजु० १६–७३–८८
ओ३म् बाहुभ्यां यशोबलम्।	इससे दायीं और फिर बायीं भुजा का।
ओ३म् करतलकरपृष्ठे।	इससे दोनों हथेलियों के ऊपर तले। यजु० १८–३७

शब्दार्थ – ***ओ३म्*** – *हे ईश्वर,* ***वाक् वाक्*** – *वाग् इन्द्रिय (जिह्वा) और इसकी शक्ति बलवान् और यश देने वाली हो,* ***प्राणः प्राणः*** – *प्राण इन्द्रिय (नाक) और इसकी शक्ति बलवान् और यश देने वाली हो,* ***चक्षुः चक्षुः*** – *आँखें और उनकी शक्ति बलवान् और यश देने वाली हो,* ***श्रोत्रं श्रोत्रम्*** – *कान और उनकी शक्ति बलवान् और यश देने वाली हो,* ***नाभिः*** – *नाभि बलवान् और यश देने वाली हो,* ***हृदयम्*** – *हृदय बलवान् और यश देने वाला हो,* ***कण्ठः*** – *कण्ठ बलवान् और यश देने वाला हो,* ***शिरः*** – *सिर बलवान् और यश देने वाला हो,* ***बाहुभ्याम्*** – *दोनों भुजाओं से,* ***यशोबलम्*** – *यश और बल को प्राप्त करूँ,* ***करतल–करपृष्ठे*** – *हथेली और उसके ऊपरी भाग में यश और बल होवे।*

विद्वान् ऋत्विक् वेद आदि समस्त विद्यायों में पारङ्गत और आत्मज्ञानी होते हैं।
[शत०ब्राह्मण ३/१/१/५]

भावार्थ – हे ईश्वर ! आपकी कृपा से हमारे शरीर के सभी अङ्ग और इन्द्रियाँ बलशाली हों जिससे हम स्वस्थ और यशस्वी हो जायें

प्रत्येक इन्द्रिय के दो–दो रूप होते हैं। एक स्थूल जो दिखाई देता है और दूसरा शक्ति रूप में सूक्ष्म इन्द्रिय। इन मन्त्रों में दोनों प्रकार की इन्द्रियों के बलवान् होने की प्रार्थना है, जिससे हम स्वस्थ रहते हुए बल युक्त हो।

अथ मार्जन मन्त्र

मार्जन का अर्थ है शुद्धि, पवित्रता अर्थात् शरीर को शुद्ध–पवित्र करने के मन्त्र। बायीं हथेली में पुनः जल लेकर दायें हाथ की मध्यमा और अनामिका अंगुलियों से निम्नलिखित मन्त्रों का उच्चारण करते हुए अपने अङ्गों पर जल छिड़कें और कामना करें कि मेरे सभी अङ्ग शुद्ध पवित्र रहें।

ओ३म् भूः पुनातु शिरसि।	इससे सिर पर।
ओ३म् भुवः पुनातु नेत्रयोः।	इससे आँखों पर।
ओ३म् स्वः पुनातु कण्ठे।	इससे कण्ठ पर।
ओ३म् महः पुनातु हृदये।	इससे हृदय पर।
ओ३म् जनः पुनातु नाभ्याम्।	इससे नाभि पर।
ओ३म् तपः पुनातु पादयोः।	इससे दायें और फिर बायें घुटने पर।
ओ३म् सत्यं पुनातु पुनः शिरसि।	इससे सिर पर।
ओ३म् खंब्रह्म पुनातु सर्वत्र।	इससे सारे शरीर पर।

शब्दार्थ –*ओ३म्* – *हे ईश्वर !,* **भूः** – *हे प्राणाधार,* **पुनातु** – *पवित्रता करो,* **शिरसि** – *सिर में, चिन्तन शक्ति में,* **भुवः** – *हे*

ऋत्विक्-ज्-यज्ञ को निष्फल होने से बचाते हैं। [शत०१-८-१-२८]

*दुःखविनाशक !, **पुनातु** – पवित्रता करो, **नेत्रयोः** – आँखों में, दर्शन शक्ति में, **स्वः** – हे सुखस्वरूप, **पुनातु** – पवित्रता करो, **कण्ठे** – कण्ठ में, वाणी में, **महः** – हे महान् प्रभो, **पुनातु** – पवित्रता करो, **हृदये** – हृदय में, **जनः** – हे उत्पादक !, **पुनातु** – पवित्रता करो, **नाभ्याम्** – नाभि में, **तपः** – हे ज्ञान स्वरूप ! दुष्टों को सन्ताप देने वाले, **पुनातु** – पवित्रता करो, **पादयोः** – पैरों में, **सत्यम्** – हे सत्य स्वरूप ! अविनाशी प्रभु, **पुनातु** – पवित्रता करो, **पुनः** – फिर से, **शिरसि** – सिर मे, चिन्तन शक्ति में, **खं ब्रह्म** – आकाश के समान सर्वव्यापक और महान ईश्वर, **पुनातु** – पवित्रता करो, **सर्वत्र** – मेरे सम्पूर्ण शरीर में।*

भावार्थ – हे ईश्वर ! आप सबके प्राणों के आधार, दुःखविनाशक, सुखस्वरूप, सबसे महान्, सबके उत्पत्ति कर्त्ता, ज्ञानस्वरूप, दुष्टों को सन्ताप देने वाले, सत्यस्वरूप और सर्वव्यापक हो। आप कृपा करके हमारे शरीर और इन्द्रियों के दोषों को दूर करके पवित्र बनाओ।

अथ प्राणायाम मन्त्र

प्राण + आयाम – प्राणों का विस्तार। निम्ननिखित मन्त्र बोलकर तीन प्राणायाम करें। प्राणायाम के अनेक भेद हैं, जो सुयोग्य शिक्षक से सीख लेने चाहिएं। यहाँ एक सरल विधि प्रस्तुत है– सीधे बैठकर ध्यान को नाक के सामने श्वास पर केन्द्रित करें। श्वास को पूरी शक्ति से बाहर निकालें और यथाशक्ति बाहर ही रोकें, फिर धीरे–धीरे श्वास अन्दर ले लें, और यथाशक्ति अन्दर रोकें। यह एक प्राणायाम हुआ। इसी तरह तीन प्राणायाम करें।

ओ३म् भूः। ओ३म् भुवः। ओ३म् स्वः। ओ३म् महः।
ओ३म् जनः। ओ३म् तपः । ओ३म् सत्यम्।

तैतिरीय आरण्यक (प्र. १०. अनु. २७)

देवयज्ञ (हवन) में यज्ञ के अधिकारी पुरुष ही यजमान और ऋत्विज् बनने चाहियें।
[शत० ५/३/२/२]

शब्दार्थ – *मार्जन मन्त्र में देख लें।*

भावार्थ – हे ईश्वर ! आप प्राणस्वरूप, दुःखविनाशक, सुखस्वरूप, सबसे महान्, सबको उत्पन्न करने वाले, ज्ञानस्वरूप और सत्यस्वरूप हो। आपके इन गुणों का ध्यान करके उपासना करता हुआ मैं दोषों का परित्याग कर रहा हूँ।

प्राणायाम से इन्द्रियों के दोष नष्ट होकर ज्ञान का प्रकाश होता है। "बल पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्म रूप हो जाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझकर उपस्थित कर लेगा।" (सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास)

अथ अघमर्षण मन्त्र

अघ – पाप। **मर्षण** – मसलना, नष्ट करना अर्थात् पाप को नष्ट करने की कामना के मन्त्र। इन मन्त्रों में बताये गये सृष्टि क्रम का विचार करें और निश्चय करें कि इस सृष्टि का निर्माण, पालन और संहार करने वाला ईश्वर है। वह सर्वव्यापक, न्याय करने वाला, सर्वत्र सर्वदा सब जीवों को कर्मों के अनुसार फल दे रहा है। उसके न्याय से कोई बच नहीं सकता। वह शुभ और अशुभ कर्मों का फल अवश्य देगा। इस प्रकार कर्मों के द्रष्टा को निश्चित मानकर अपने आत्मा और मन को पाप की ओर कभी न जाने दें।

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः॥

ओ३म् समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी॥

ऋ० १०–१९०–२
ऋ० १०–१९०–१

शुभ कर्मरूप यज्ञ में प्रभु ने मनुष्य को यजमान रूप से बान्धा है।
[ऋग्० १०-९०-१५ + यजु० ३१-२५]

ओ३म् सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः॥

ऋ० १०–१९०–३

शब्दार्थ – *ऋतम्* – *गतिशीलता चेतन जगत् या वेद ज्ञान,* **च** – *और,* ***सत्यम्*** – *अचेतन जगत्,* **च** – *और,* ***अभि इद्धात्*** – *सब ओर से प्रकाशित,* ***तपसः*** – *ज्ञान रूप सामर्थ्य से,* ***अध्यजायत*** – *उत्पन्न हुआ,* ***ततः*** – *उसी ईश्वर के सामर्थ्य से,* ***रात्री*** – *प्रलयरूपी रात्रि,* ***अजायत*** – *उत्पन्न हुई,* ***ततः*** – *उसी ईश्वर के सामर्थ्य से,* ***समुद्रः*** – *मेघ रूपी समुद्र,* ***अर्णवः*** – *पृथिवी का समुद्र,* ***समुद्रात्*** – *मेघ रूपी समुद्र से,* ***अर्णवात्*** – *पृथिवी के समुद्र से,* ***अधि*** – *वाद में,* ***संवत्सरः*** – *क्षण, मुहूर्त, प्रहर आदि काल युक्त वर्ष,* ***अजायत*** – *उत्पन्न हुआ,* ***अहोरात्राणि*** – *दिन और रात,* ***विदधत्*** – *विधि पूर्वक बनाये,* ***विश्वस्य*** – *संसार के,* ***मिषतः*** – *सुगमता से,* ***वशी*** – *वश में रखने वाले ईश्वर ने,* ***सूर्या चन्द्रमसौ*** – *सूर्य और चन्द्रमा को,* ***धाता*** – *ईश्वर ने,* ***यथापूर्वम्*** – *पहले वाली सृष्टि के समान,* ***अकल्पयत्*** – *बनाया है,* ***दिवम्*** – *द्युलोक को,* **च**– *और,* ***पृथिवीम्*** – *पृथिवी को,* **च** – *और,* ***अन्तरिक्षम्*** – *आकाश को,* ***अथ*** – *इसके बाद,* ***स्वः*** – *आकाश में स्थिर लोक लोकान्तरों को बनाया।*

भावार्थ – सर्वत्र प्रकाशमान् ईश्वर के अनन्त सामर्थ्य से वेद–विद्या और त्रिगुणात्मक प्रकृति प्रकट हुई। उसी परमात्मा के सामर्थ्य से प्रलय उत्पन्न हुए॥ १॥

सारे ब्रह्माण्ड को सहज ही में अपने वश में रखने वाले परमेश्वर ने समुद्र की उत्पत्ति के पश्चात् संवत्सर (वर्ष) और फिर इनके विभाग, दिन, रात, क्षण, मुहूर्त आदि को रचा॥ २॥

केवल वेदज्ञ विद्वान् ब्राह्मण को ही यज्ञ कराने का अधिकार है अन्यों को नहीं। **[महर्षि दयानन्द सरस्वती (संस्कारविधि)]**

सब जगत् को धारण और पोषण करने वाले परमात्मा ने जैसे पूर्वकल्प में सूर्य और चन्द्र रचे, वैसे ही इस कल्प में भी रचे हैं। ठीक उसी प्रकार द्युलोक, पृथिवीलोक, अंतरिक्ष और आकाश में जितने लोक हैं उनका निर्माण भी पूर्वकल्प के अनुसार ही किया है॥ ३॥

आचमन मन्त्र

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये।
शँयोरभिस्त्रवन्तु नः ॥ यजु० अ० ३६, मंत्र १२

इस मंत्र से तीन आचमन कर, गायत्री मंत्र से परमेश्वर की स्तुति करें।

मनसा परिक्रमा मन्त्र

मनसा – मन के द्वारा। **परिक्रमा** – भ्रमण करना अर्थात् मन द्वारा सब दिशाओं में परिक्रमा करके ईश्वर की सर्वव्यापक सत्ता का अनुभव करना। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, नीचे और ऊपर सब जगह उसी की सत्ता है।

ओ३म् प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥

अथर्ववेद काण्ड ३ सूक्त २७ मन्त्र १

शब्दार्थ – ***प्राची*** – *पूर्व,* ***दिक्*** – *दिशा में,* ***अग्नि*** – *ज्ञान स्वरूप ईश्वर,* ***अधिपतिः*** – *स्वामी है,* ***असितः*** – *बन्धन रहित (वह ईश्वर),* ***रक्षिता*** – *रक्षक है,* ***आदित्याः*** – *सूर्य की किरणें,* ***इषवः*** – *बाण के समान रक्षक और प्रेरक हैं,* ***तेभ्यः*** – *उनके लिए,* ***नमः*** – *नमस्कार,* ***अधिपतिभ्यः*** – *स्वामी के लिए,* ***नमः*** – *नमस्कार,* ***रक्षितृभ्यः*** – *रक्षा करने वाले के लिए,* ***नमः*** – *नमस्कार,* ***इषुभ्यः*** – *बाणों के लिए,* ***नमः*** – *नमस्कार अर्थात् इनके गुणों का प्रशंसा पूर्वक उपयोग करें,* ***एभ्यः*** – *इन सबके लिए (फिर से),* ***अस्तु*** – *(नमस्कार) हो,* ***यः*** – *जो (द्वेष भावना*

यज्ञवेदि पर वेद आदि समस्त विद्याओं में पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मण ही बैठते हैं।
[शत०१४-१-१-१ तैत्ति० सं० ६-२-४]

*से), **अस्मान्** – हमसे, **द्वेष्टि** – द्वेष करता है, **यम्** – जिससे (द्वेष भावना के कारण), **वयम्** – हम, **द्विष्मः** – द्वेष करते हैं, **तम्** – उसको, **वः** – आपके, **जम्भे** – जबड़े में अर्थात् न्याय व्यवस्था में, **दध्मः** – रखते हैं।*

भावार्थ – पूर्व दिशा में ज्ञान स्वरूप ईश्वर हमारा स्वामी है। वह बन्धनों से रहित और सब प्रकार से हमारी रक्षा करने वाला है। सूर्य की किरणें बाण के समान हैं, जो रक्षा करती हैं और प्रेरणा देती हैं। ईश्वर के इन गुणों के लिए नमस्कार। सबके स्वामी ईश्वर के लिए नमस्कार। रक्षा करने वाले ईश्वर के लिए नमस्कार। बाणों के लिए नमस्कार अर्थात् बाण के समान सूर्य की किरणों की प्रशंसा पूर्वक उपयोग करें। इन सबको एक बार फिर नमस्कार। जिस द्वेष भावना से युक्त होकर कोई व्यक्ति हमारे साथ द्वेष करता है अथवा जिस द्वेष भावना से हम दूसरों से द्वेष करते हैं, हे ईश्वर! उसको और उसकी द्वेष भावना को हम आपकी न्याय व्यवस्था के अधीन करते हैं। भाव यह है कि द्वेष करने वाले को, द्वेष भाव का फल देने के लिए हम आपको सौंपते हैं। आप उनको कर्मों के अनुसार फल देकर न्याय करने की कृपा करें। हम द्वेष भाव के कारण मन, वचन और कर्म से बदले की क्रिया नहीं करेंगे।

ओ३म् दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः।तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥२॥

अथर्ववेद काण्ड ३ सूक्त २७ मन्त्र २

शब्दार्थ – ***दक्षिणा*** – *दक्षिण,* ***दिक्*** – *दिशा में,* ***इन्द्रः*** – *पूर्ण ऐश्वर्यवान् ईश्वर,* ***अधिपतिः*** – *स्वामी है,* ***तिरश्चिराजी*** – *कीट पतंङ्ग बिच्छु आदि की पंक्तियों अर्थात् समूहों से,* ***रक्षिता***

शुद्ध वेदमंत्रों के उच्चारण से यजमान का हित करो जिससे यज्ञकर्ता यजमान अपनी आयु-पुत्र-पौत्र और पशुओं से समृद्ध रहे।

[शत०१४/३/२/१ साम० ३५०]

– रक्षा करने वाला है, ***पितरः*** *– ज्ञान, बल, धन, आयु से सम्पन्न पुरुष,* ***इषवः*** *– बाण के समान रक्षक और प्रेरक हैं, ...शेष पूर्व के समान।*

भावार्थ – दक्षिण दिशा में परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर हमारा स्वामी है। वही कीट, पतङ्ग, बिच्छु आदि के समूह से रक्षा करता है अर्थात् ईश्वर की भक्ति से मनुष्य इन तिर्यक् योनियों में जाने से बच जाता है। ज्ञान, बल, धन और आयु से सम्पन्न पुरुष बाण के समान हैं, जो अपने ज्ञान द्वारा हमें पाप कर्मों से बचाकर धर्म के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। ...शेष पूर्व के समान।

ओ३म् प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम ऐभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥३॥

अथर्ववेद काण्ड ३ सूक्त २७ मन्त्र ३

शब्दार्थ –***प्रतीची*** *– पश्चिम,* ***दिक्*** *– दिशा में,* ***वरुणः*** *– सर्वश्रेष्ठ ईश्वर,* ***अधिपति*** *– स्वामी है,* ***पृदाकुः*** *– सांप, अजगर आदि विषधारी प्राणियों से,* ***रक्षिता*** *– रक्षा करने वाला है,* ***अन्नम्*** *– अन्न आदि खाद्य पदार्थ,* ***इषवः*** *– बाण के समान रक्षक और प्रेरक हैं, ...शेष पूर्व के समान।*

भावार्थ – पश्चिम दिशा में सर्वश्रेष्ठ ईश्वर हमारा स्वामी है। जो सांप, अजगर आदि विषधारी प्राणियों से हमारी रक्षा करता है अर्थात् ईश्वर की भक्ति से मनुष्य इन योनियों में जाने से बच जाता है। अन्न आदि खाद्य पदार्थ बाण के समान हैं जो हमारी रक्षा करते हैं और प्रेरणा देते हैं।...शेष पूर्व के समान।

ओ३म् उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥४॥

अथर्व० काण्ड ३ सूक्त २७ मन्त्र ४

परमेश्वर यजमान को दूध-दधि और घृत की नदी बहाने वाली गायों के यूथ [झुण्ड] देता है। [ऋक् १-८१-७]

शब्दार्थ –**उदीची** – *उत्तर,* ***दिक्*** *– दिशा में,* ***सोमः*** *– शान्ति आदि गुणों से आनन्द देने वाला ईश्वर,* ***अधिपतिः*** *– ईश्वर,* ***स्वजः*** *– अजन्मा ईश्वर,* ***रक्षिता*** *– रक्षा करने वाला है,* ***अशनिः*** *– विद्युत,* ***इषवः*** *– बाण के समान रक्षक और प्रेरक है। ...शेष पूर्व के समान।*

भावार्थ – उत्तर दिशा में शान्तिदायक गुणों से आनन्द की वर्षा करने वाला ईश्वर हमारा स्वामी है। कभी जन्म न लेने वाला वही हमारा रक्षक है। विद्युत बाण के समान है, जो रक्षा करती है और प्रेरणा देती है। ...शेष पूर्व के समान।

ओ३म् ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः।तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥५॥

अथर्ववेद काण्ड ३ सूक्त २७ मन्त्र ५

शब्दार्थ –***ध्रुवा*** *– नीचे की,* ***दिक्*** *– दिशा में,* ***विष्णुः*** *– सर्वव्यापक ईश्वर,* ***अधिपतिः*** *– स्वामी है,* ***कल्माषग्रीव*** *– पाप, द्वेष, बुराइयों को निगलने वाला, नष्ट करने वाला ईश्वर,* ***रक्षिता*** *– रक्षा करने वाला है,* ***वीरुधः*** *– वनस्पतियाँ लतायें आदि,* ***इषवः*** *– बाण के समान रक्षक और प्रेरक हैं, ...शेष पूर्व के समान।*

भावार्थ – नीचे की दिशा में सर्वप्यापक ईश्वर हमारा स्वामी है। पाप, दोष, बुराइयों को नष्ट करके वही हमारी रक्षा करता है। विविध प्रकार की वनस्पतियाँ बाण के समान हैं जो पर्यावरण को शुद्ध करके रक्षा करती हैं और प्रेरणा देती हैं।... शेष पूर्व के समान

ओ३म् ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान्द्वेष्टि वयं यं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥६॥

अथर्ववेद काण्ड ३ सूक्त २७ मन्त्र ६

यज्ञ में लौकिक वाणी का प्रयोग नहीं करना चाहिये– ऐसा करने से यज्ञ और यजमान की हिंसा होती है।

[नाऽयज्ञियं वाचं वदेत् गोभिलगृह सूत्र १-६-१८
मा यज्ञं हिंसिष्टं मा यज्ञपतिं खदिर गृ० सूत्र ११-११-११
शत० १-२-२-९, यजु० ५/२]

शब्दार्थ – ***ऊर्ध्वा*** – *ऊपर की,* ***दिक्*** – *दिशा में,* ***बृहस्पतिः*** – *ज्ञानवान् तथा ब्रह्माण्ड का पालक ईश्वर,* ***अधिपतिः*** – *स्वामी है,* ***श्वित्रः*** – *शुद्ध स्वरूप,* ***रक्षिता*** – *रक्षा करने वाला है,* ***वर्षम्*** – *वर्षा,* ***इषवः*** – *बाण के समान रक्षक और प्रेरक है, ...शेष पूर्व के समान।*

भावार्थ – ऊपर की दिशा में ज्ञानवान् तथा विशाल ब्रह्माण्ड का पालन करने वाला ईश्वर हमारा स्वामी है। वही शुद्ध स्वरूप हमारा रक्षक है। वर्षा बाण के समान है, जो रक्षा करती है ओर प्रेरणा देती है।...शेष पूर्व के समान।

उपस्थान मन्त्र

उप – समीप। **स्थान** – बैठना अर्थात् अपने हृदय में ईश्वर का अनुभव करना। निम्नलिखित मन्त्रों का उच्चारण करते हुए अपने आपको सर्वरक्षक, सर्वशक्तिमान् प्रकाश स्वरूप प्रभु की पवित्र गोद में बैठा हुआ अनुभव करें–

ओ३म् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥१॥

यजु० ३५/१४

शब्दार्थ – ***उत्*** – *अच्छे प्रकार श्रद्धा से,* ***वयम्*** – *हम,* ***तमसः*** – *अज्ञान रूपी अन्धकार से,* ***परि*** – *पृथक् रहने वाले,* ***स्वः*** – *सुखस्वरूप ईश्वर को,* ***पश्यन्त*** – *अनुमान करते हुए,* ***उत्तरम्*** – *प्रलय के बाद भी विद्यमान,* ***देवम्*** – *ईश्वर को,* ***देवत्रा*** – *देवों के भी देव को,* ***सूर्यम्*** – *चराचर के संचालक ईश्वर को,* ***अगन्म*** – *प्राप्त करें,* ***ज्योतिः*** – *प्रकाशस्वरूप ईश्वर को,* ***उत्तमम्*** – *सर्वोत्तम को।*

भावार्थ – हे ईश्वर ! आप अज्ञान रूपी अन्धकार से रहित, प्रकाशस्वरूप, सुखस्वरूप, चराचर के संचालक, प्रलय के बाद भी विद्यमान रहने वाले, देवों के भी देव और सबसे उत्कृष्ट हो। ऐसी कृपा करो कि हम अच्छे प्रकार श्रद्धा और

यज्ञ में वेदमंत्रों के अशुद्ध उच्चारण से यजमान की आयु-प्रजा और पशुओं का अमंगल होता है और यजमान के अभिप्राय को नष्ट करता है।
[सामवेदीय नारदीयशिक्षा १-६]

भक्ति से आपको प्राप्त करें।

ओ३म् उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥२॥ यजु० ३३/३१

शब्दार्थ –उत् – *अच्छे प्रकार,* **उ** – *तर्क–वितर्क से निश्चय करके,* **त्यम्** – *उसको (ईश्वर को),* **जातवेदसम्** – *जगत् को उत्पन्न करने वाले और जानने वाले (ईश्वर को),* **देवम्** – *दिव्य गुण वाले को,* **वहन्ति** – *प्राप्त कराते हैं, जनाते हैं,* **केतवः** – *सृष्टि के विविध पदार्थ नियम तथा वेदमन्त्र,* **दृशे** – *ज्ञान, प्राप्त करने के लिए,* **विश्वाय** – *पूर्ण रूप से,* **सूर्यम्** – *चराचर के संचालक ईश्वर को।*

भावार्थ – सृष्टि की नियमपूर्वक रचना और वेद के मन्त्र तर्क–वितर्क के साथ ईश्वर का ज्ञान व निश्चय अच्छी प्रकार करा रहे हैं। वही जड़ और चेतन समस्त संसार का आधार है। पूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त करने के लिए हम दिव्य गुण वाले ईश्वर की ही उपासना करें।

ओ३म् चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावा पृथिवीऽअन्तरिक्ष$^{\circ}$सूर्य आत्माऽजगतस्तस्थुषश्च
स्वाहा॥३॥ यजु० अध्याय ७ मन्त्र ४२

शब्दार्थ –*चित्रम्* – *विलक्षण परमेश्वर !,* **देवानाम्** – *विद्वानों के हृदय में,* **उद् *अगात्*** – *अच्छी प्रकार प्रकाशित हुआ है,* ***अनीकम्*** – *यह ईश्वर सबका उत्तम बल है, आश्रय है,* **चक्षुः** – *सबका द्रष्टा और दर्शयिता है,* **मित्रस्य** – *मित्र स्वभाव वाले उपासक का,* **वरुणस्य** – *श्रेष्ठ आचरण वाले उपासक का,* ***अग्नेः*** – *उत्तम ज्ञान वाले उपासक का,* **आप्रा** – *सब ओर से धारण करके रक्षा कर रहा है,* **द्यावा पृथिवी** – *द्युलोक और पृथिवी लोक,* **अन्तरिक्षम्** – *आकाश,* **सूर्यः** – *संसार का उत्पादक और प्रकाशक,* **आत्मा** – *अन्तर्यामी रूप से व्याप्त,*

यज्ञ में वेद मंत्रों के प्रयोग के अतिरक्त अन्य कर्म न करो।
[महर्षिः- संस्कारविधि-पुंसवन संस्कार यजु० १-२]

जगतः – *चर (जीव) जगत् का,* ***तस्थुषः*** – *जड़ जगत् का,* ***च*** – *और,* ***स्वाहा*** – *सत्य कह रहा हूँ (अनुभव कर रहा हूँ)।*

भावार्थ – ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव आश्चर्यजनक हैं। वह श्रेष्ठ विद्वानों के हृदय में प्रकाशित रहता है। वह सबका आश्रय है। मित्र स्वभाव वाले, श्रेष्ठ आचरण वाले, उत्तम ज्ञान वाले उपासकों का द्रष्टा और दर्शनीयता वही है। द्युलोक, पृथिवी लोक, अन्तरिक्ष लोक आदि समस्त संसार का उत्पादक, धारक और रक्षक वही है। वही चराचर संसार का आधार है। ईश्वर के इस स्वरूप का अनुभव मैं यथार्थ रूप से कर रहा हूँ।

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत्ँ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥४॥

यजु० ३६/२४

शब्दार्थ – ***तत्*** – *वह ईश्वर,* ***चक्षुः*** – *सबका द्रष्टा और दर्शयिता है,* ***देवहितम्*** – *विद्वानों और उपासकों का हितकारी है,* ***पुरस्तात्*** – *सृष्टि के पूर्व से लेकर सदा,* ***शुक्रम्*** – *शुद्ध स्वरूप,* ***उच्चरत्*** – *सर्वोच्च रूप से सर्वत्र विद्यमान है,* ***पश्येम*** – *(उस ईश्वर को हम) देखते रहें,* ***शरदः*** – *वर्षों तक,* ***शतम्*** – *सौ,* ***जीवेम*** – *हम जीवित रहें (उसी का ध्यान करते हुए),* ***शरदः*** – *वर्षों तक,* ***शतम्*** – *सौ,* ***शृणुयाम*** – *हम सुनते रहें (उसी के गुण),* ***शरदः*** – *वर्षों तक,* ***शतम्*** – *सौ,* ***प्रब्रवाम*** – *प्रवचन करते रहें (उसी ईश्वर का),* ***शरदः*** – *वर्षों तक,* ***शतम्*** – *सौ,* ***अदीनाः*** – *दीनता रहित स्वतन्त्र,* ***स्याम*** – *रहें,* ***शरदः*** – *वर्षों तक,* ***शतम्*** – *सौ,* ***अदीनाः*** – *दीनता रहित स्वतन्त्र,* ***स्याम*** – *रहें,* ***शरदः*** – *वर्षों तक,* ***शतम्*** – *सौ,* ***भूयः*** – *अधिक,* ***च*** – *और,* ***शरदः*** – *वर्षों तक,* ***शतात्*** – *सौ से भी अधिक।*

समिधा त्वचायुक्त हों- फाड़ी हुई नहीं, त्वचा में ही तेज और प्राणशक्ति होती है।
[शत० महर्षि याज्ञवल्क्य, आ०सूत्रावली]

भावार्थ – हे ईश्वर ! आप सबको देखने वाले तथा सबको मार्ग दिखाने वाले हो। आप ही विद्वानों और उपासकों के हितैषी हो। आप सृष्टि के पूर्व से लेकर सदा विद्यमान रहने वाले हो। आपके शुद्ध स्वरूप को हम सौ वर्षों तक देखते रहें। सौ वर्षों तक आपका ध्यान करते हुए जीवित रहें। सौ वर्षों तक आपके गुण सुनते रहें। सौ वर्षों तक आपके गुणों का प्रवचन करते रहें। सौ वर्षों तक हम दीनता रहित रहें अर्थात् किसी के अधीन न रहें तथा सौ वर्षों के बाद भी हम आपको देखते हुए, आपका ध्यान करते हुए, आपके गुणों को सुनते हुए, आपका गुणगान करते हुए, दीनता रहित होकर जीवित रहें।

गायत्री मन्त्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ ऋक्० ३–६२–१० / यजु०३६–३ /

समर्पण मन्त्र

हे ईश्वर दयानिधे! भवत्कृपयानेन जपोपासनादि कर्मणा, धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः॥

शब्दार्थ – ***हे ईश्वर !*** – *हे ईश्वर !,* ***दयानिधे*** – *दया के सागर,* ***भवत्*** – *आपकी,* ***कृपया*** – *कृपा से,* ***अनेन*** – *इस,* ***जप*** – *जप करने से,* ***उपासना*** – *उपासना से,* ***आदिकर्मणा*** – *योगाभ्यास आदि कर्मों से,* ***धर्म*** – *सत्य और न्याय का आचरण करना,* ***अर्थ*** – *धर्म पूर्वक पदार्थों का प्राप्त करना,* ***काम*** – *धर्म और अर्थ से प्राप्त किये गये पदार्थों का सेवन करना,* ***मोक्षाणाम्*** – *सब प्रकार के दुःखों से छूटकर परम आनन्द में रहना। इन चारों की,* ***सद्यः*** – *शीघ्र ही,* ***सिद्धिः*** – *प्राप्ति,* ***भवेत्*** – *होवे,* ***नः*** – *हम को।*

भावार्थ – हे दया के सागर ईश्वर ! आपकी कृपा से,

पलाश (ढाक) फल्गु–वट (न्यग्रोध)–अश्वत्थ (पीपल)–विकंकत–(वंज) –गूलर (उदुम्बर)–चन्दन–सरल–देवदारू–साल–खदिर (खैर)– शमी (जाण्डर –आम ये यजियवृक्ष हैं– समिधा इन्हीं की होती है।

[शत० १-५-४-१+ तै० सं० ३-४-८ महर्षि:- संस्कार विधि याज्ञिक आचार संहिता पृष्ठ २२६]

जो–जो उत्तम काम हम लोग करते हैं, वे सब आपके अर्पण हैं। इस जप, उपासना आदि आपकी भक्ति से हमें शीघ्र ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति हो।

अथ नमस्कार मन्त्र

ओ३म् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च। नमः शङ्कराय च मयस्कराय च। नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

यजु० १६/४१

शब्दार्थ – ***नमः*** – *नमस्कार,* ***शम्भवाय*** – *शान्तिस्वरूप प्रभु के लिए,* ***च*** – *और,* ***मयोभवाय*** – *सुखस्वरूप प्रभु के लिए,* ***च*** – *और,* ***नमः*** – *नमस्कार,* ***शङ्कराय*** – *शान्ति देने वाले प्रभु के लिए,* ***च*** – *और,* ***मयस्कराय*** – *सुख देने वाले प्रभु के लिए,* ***च*** – *और,* ***नमः*** – *नमस्कार,* ***शिवाय*** – *आनन्ददाता एवं कल्याण करने वाले प्रभु के लिए,* ***च*** – *और,* ***शिवतराय*** – *अत्यन्त आनन्ददाता एवं अत्यन्त कल्याण करने वाले प्रभु के लिए,* ***च*** – *और।*

भावार्थ – हे शान्तिस्वरूप, सुखस्वरूप और आनन्दस्वरूप प्रभो ! आप शान्ति, सुख और आनन्द देकर हमारा कल्याण करो। हम बारम्बार आपको नमस्कार करते हैं।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

॥ इति सन्ध्या–उपासना विधिः॥

सन्ध्या के मन्त्रों का भावार्थ –

हे सत्–चित् आनन्दस्वरूप ईश्वर ! हम उपासक भक्ति भावना से पूरित होकर प्रेम और श्रद्धा से आपकी स्तुति प्रार्थना और उपासना कर रहे हैं। हमारे ऊपर सुख शान्ति की वर्षा

शिर पर शिखा-ऐश्वर्य - श्री - शोभा-लक्ष्मी आदि के लिये होती है।
["श्रियै शिखा" यजु०१९-९२]

करके कल्याण करो। मेरा यह शरीर श्रेष्ठ कर्मों का मन्दिर बनकर सदा सुदृढ़ और स्वस्थ रहे। बुद्धि शुद्ध पवित्र और शुभ संकल्पों वाली हो। हृदय सत्य, प्रेम, अहिंसा शान्ति और उदारता का निवास बना रहे।

हे ईश्वर ! आप ही सृष्टि के निर्माता और संचालक हो। आप अग्नि, वायु, पृथिवी, जल, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र आदि समस्त ब्रह्माण्ड को बनाकर धारण और पालन कर रहे हो। हम आपके सर्वव्यापक, न्यायकारी स्वरूप का अपने हृदय मन्दिर में दर्शन करके पाप के आचरण और दुष्कर्मों से सदा दूर रहें।

हे सर्वव्यापक ईश्वर ! पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, नीचे और ऊपर सभी दिशाओं में आप ही हमारे स्वामी हो। आप ही अपनी दिव्य शक्तियों से सभी दिशाओं में हमारी रक्षा करते हो। अतः हम आप को और रक्षा करने वाली आपकी दिव्य शक्तियों को बार–बार प्रणाम करते हैं। सृष्टि के विविध पदार्थ बाण के समान हमारे रक्षक और प्रेरक हैं।

हे ईश्वर ! आप हम सबकी द्वेष भावना को नष्ट करने की कृपा करो जिससे हम सदा आनन्द में रहें। आपके गुण, कर्म और स्वभाव हम अल्प ज्ञानियों के लिये बहुत ही आश्चर्यकारक हैं। ज्ञानी लोग आपके गुणों का गान करते हुए ज्ञान रूपी नेत्रों से आपकी अनुभूति में रम कर सदा आनन्द विभोर रहते हैं।

हे सुखस्वरूप ईश्वर ! हम आपके स्वरूप को सौ वर्षों तक देखते रहें। सौ वर्षों तक आपका ध्यान करते हुए जीवित रहें। सौ वर्षों तक आपके गुणों को सुनते रहें। सौ वर्षों तक आपके गुणों का प्रवचन करते रहें और सौ वर्षों तक हम

यज्ञोपवीत और शिखा रहित को यज्ञ में आहुति (हवि) देने का अधिकार नहीं है। [कात्यायन स्मृति+ऐतरेय ब्राह्मण+संस्कार विधि उपनयन संस्कार]

स्वाधीन होकर जीवन बितायें। इतना ही नहीं, सौ वर्षों के बाद भी हमारा जीवन इसी प्रकार रहे।

हे दया के सागर! आपकी उपासना भक्ति और आपके जप से हमें **धर्म**– जो सत्य और न्याय का आचरण करना है उसकी। **अर्थ**– जो धर्मपूर्वक पदार्थों की प्राप्ति करना है उसकी। **काम**– जो धर्म और अर्थ से प्राप्त किये गये पदार्थों का सेवन करना है उसकी तथा **मोक्ष**– मुक्ति की, शीघ्र ही प्राप्ति हो। हमें सब प्रकार का सुख, शान्ति देकर मोक्ष रूप आनन्द प्रदान करो। यही विनती है। हे प्रभो ! स्वीकार करो–स्वीकार करो।

ऋत्विजों में ऋग्वेद का पण्डित "होता" यज्ञवेदि के पश्चिम भाग में, यजुर्वेद का पण्डित "अध्वर्यु" वेदि के उत्तर भाग में, सामवेद का पण्डित 'उद्गाता वेदि की पूर्वदिशा में और अथर्ववेदी चतुर्वेद -पारङ्गत 'ब्रह्मा' वेदि की दक्षिण दिशा में बैठता है जो देवयज्ञ(अग्निहोत्र) का सफलतम ऋत्विक् होता है, वह यजमान और यज्ञ को निष्फल होने से बचाता है।

[ऋक् १०-७१-११]

[ऋत्विग्वरणम्]

यजमानोक्ति :– **'ओमावसोः सदने सीद'**– हे भगवन्! **(वसोः)** यज्ञ के **(सदने)** आसन पर **(आ–सीद)** आकर बैठिये।

ऋत्विगुक्ति :–**'ओं सीदामि'**–जी हां, बैठता हूँ।

यजमानोक्ति :– **'अहम् अद्य उक्त–कर्म–करणाय भवन्तं वृणे'**– मैं आज यज्ञ कर्म के लिये आपको स्वीकार करता हूँ।

ऋत्विगुक्ति :– **'वृतोऽस्मि'** मैं स्वीकार करता हूँ।

देवयज्ञ, अग्निहोत्र, हवन – विधि।

आचमन मन्त्र

शान्तचित्त होकर दाईं हथेली पर निर्मल जल लेकर
इन तीन मन्त्रों से तीन आचमन करें।

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा॥ १॥
ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२॥
ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥३॥

बौधायन धर्मसूत्र ४–७–३।। गौपथ ब्राह्मण।।

शब्दार्थ – हे (ओम्) *– रक्षक,* ***अमृत*** *– अमृतस्वरूप भगवन्! आप हमारे,* ***उपस्तरणं*** *– बिछौने के समान,* ***असि*** *– हैं,* ***स्वाहा*** *– यह मैं यथार्थ से जानता हूं।*

हे (ओम्) *– रक्षक,* ***अमृत*** *– अमृतस्वरूप भगवन्! आप हमारे,* ***अपिधानं*** *– ओढ़ने के समान,* ***असि*** *– हैं,* ***स्वाहा*** *– यह मैं यथार्थ रूप से जानता हूं।*

हे (ओम्) *– रक्षक भगवन्!,* ***सत्यं यशः*** *– सचाई से प्राप्त किया हुआ यश तथा,* ***सत्यं श्रीः*** *– सचाई से प्राप्त किया हुआ धन,* ***मयि*** *– मुझसे,* ***श्रीः*** *– धन के रूप में,* ***श्रयताम्–श्री श्रये*** *– आश्रय ग्रहण करें।*

देवयज्ञ (अग्निहोत्र) में ब्रह्मा सब विद्याओं का जानने वाला और सब सत्यविद्याओं के मूल ब्रह्म का ज्ञाता होता है। [निरुक्त १-८]

[अंग स्पर्श के मन्त्र]

निम्नलिखित मंत्रों का उच्चारण करते हुए बायीं हथेली में थोड़ा सा जल लेकर दाहिने हाथ की मध्यमा तथा अनामिका अंगुलियों को अंगूठे से मिलाकर जल–स्पर्श करके प्रथम दायें फिर बायें भाग का स्पर्श करें :

ओ३म् वाङ्म आस्येऽस्तु – मुख को स्पर्श करें–

ओ३म् नसोर्मे प्राणोऽस्तु – नासिका के दोनों छिद्रों का

ओ३म् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु – दोनों आंखों का

ओ३म् कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु – *दोनों कानों का*

ओ३म् बाह्वोर्मे बलमस्तु – दोनो भुजाओं का

ओ३म् ऊर्वोर्मऽ ओजोऽस्तु – दोनों जंघाओं का स्पर्श करें।

ओ३म् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु– शरीर के सब अंगों पर जल के छींटे दें– पारस्करगृह्य सूत्र १–३–२५

शब्दार्थ – ओ३म्– *हे ज्ञान के रक्षक प्रभो !,* ***मे आस्ये*** *– मेरे मुख में,* ***वाक्*** *– वाक्–शक्ति,* ***अस्तु*** *– विद्यमान रहे।*

ओ३म् – *हे जीवन देने हारे प्रभो !,* ***मे नसोः*** *– मेरी दोनों नासिकाओं में,* ***प्राणः*** *– प्राण शक्ति,* ***अस्तु*** *– विद्यमान रहे।*

ओ३म्– *हे मार्गदर्शक प्रभो !,* ***मे अक्ष्णोः*** *– मेरी दोनों आंखों की,* ***चक्षुः*** *– देखने की शक्ति,* ***अस्तु*** *– विद्यमान रहे।*

ओ३म्– *हे भक्तों की प्रार्थना सुनने हारे प्रभो !* ***कर्णयोः मे*** *– मेरे दोनों कानों में,* ***श्रोत्रम्*** *– सुनने की शक्ति,* ***अस्तु*** *– विद्यमान रहे।*

ओ३म्– *हे बल देने हारे प्रभो !,* ***मे बाह्वोः*** *– मेरी भुजाओं में,* ***बलम्*** *– बल,* ***अस्तु*** *– विद्यमान रहे।*

ओ३म् – *हे पराक्रम देने वाले प्रभो !,* ***मे ऊर्वोः*** *– मेरी जंघाओं में,* ***ओजः*** *– पराक्रम,* ***अस्तु*** *– रहे।*

"ऋत्विजों के बिना यज्ञ का काम कभी नहीं हो सकता "

[ऋग्वेदादिभाष्य भूमिकाः– महर्षि दयानन्द सरस्वती]

ओ३म् – *रोगों को दूर करने वाले प्रभो !,* ***मे अंगानि*** – *मेरे अंग,* ***अरिष्टानि*** – *रोग रहित और,* ***मे तनूः*** – *मेरा शरीर, शरीर के सब अंग,* ***तन्वा*** – *विस्तार के,* ***सह*** – *साथ,* ***सन्तु*** – *विद्यमान रहें, बढ़ें, फैलें, सुदृढ़ हों।*

[यज्ञोपवीत मन्त्र]

ओ३म् यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्रयम् प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तुतेजः।१।
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि।२।

पारस्करगृहय २–२–११

वेदोक्त कर्म में अधिकारी बनने के लिए इस ब्रह्म–सूत्र को जो परमात्मा के लिए ज्ञान प्राप्ति का सूचक है शुद्ध–ज्ञान प्रदान करने वाला है, जो ईश्वर से स्वभाव सिद्ध उद्दिष्ट है, पूर्व काल से चला आता है, आयु के लिए विशेष हितकारी है, ऐसे ब्रह्म सूत्र को मैं (धारण) करता हूँ। ईश्वर करे यह निर्मलता का बोधक यज्ञोपवीत बल और तेज देने वाला हो। हे ब्रह्म सूत्र ! तू यज्ञोपवीत है। तुझे यज्ञ कार्य के लिये ही ग्रहण करता हूँ। मैं आज स्वयं को यज्ञोपवीत से बांधता हूँ।

ऋत्विजों में ब्रह्मा यज्ञ रूपी रथ का सारथि है। [ऋग्० १-१५८-६]

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनामन्त्राः

सब संस्कारों के प्रारम्भ में निम्नलिखित मंत्रों का अर्थ द्वारा पाठ एक विद्वान् या बुद्धिमान् पुरुष करे। ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना स्थिर–चित्त होकर परमात्मा में ध्यान लगाकर करें।

ओ३म्, विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव !
यद्भद्रं तन्नऽ आ सुव ॥१॥ यजु० अ० ३०, मं० ३

शब्दार्थ –हे *सवितः* – *सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त,* **देव** – *शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके,* **नः** – *हमारे,* **विश्वानि** – *सम्पूर्ण,* **दुरितानि** – *दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को,* **परा, सुव** – *दूर कर दीजिये,* **यत्** – *जो,* **भद्रम्** – *कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं,* **तत्** – *वह सब हमको,* **आ, सुव** – *प्राप्त कीजिये, कराइये।*

तू सर्वेश, सकल सुखदाता, शुद्ध स्वरूप विधाता है,
उसके कष्ट नष्ट हो जाते जो तेरे ढिग आता है।
सारे दुर्गुण दुर्व्यसनों से हमको नाथ ! बचा लीजे,
मंगलमय गुण, कर्म, पदारथ प्रेम सिन्धु हमको दीजै॥

ओ३म् हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥२॥
यजु० अ० १३, मं० ४

शब्दार्थ –जो *हिरण्यगर्भः* – *स्वप्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्य चन्द्रादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो,* **भूतस्य** – *उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का,* **जातः** – *प्रसिद्ध,* **पतिः** – *स्वामी,* **एकः** – *एक ही चेतनस्वरूप,*

दान करने का अग्नि होत्र (देवयज्ञ) श्रेष्ठ मार्ग है । [तै० आर० १०-६३]

आसीत् – *था, जो,* ***अग्रे*** – *सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व,* ***समवर्तत*** – *वर्तमान था,* ***सः*** – *सो, वह,* ***इमाम्*** – *इस,* ***पृथिवीम्*** – *भूमि,* ***उत*** – *और,* ***द्याम्*** – *सूर्यादि को,* ***दाधार*** – *धारण कर रहा है, हम लोग उस,* ***कस्मै*** – *सुखस्वरूप,* ***देवाय*** – *शुद्ध परमात्मा के लिये,* ***हविषा*** – *ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम से,* ***विधेम*** – *विशेष भक्ति किया करें।*

तू ही स्वयं प्रकाश सुचेतन, सुख–स्वरूप शुभ त्राता है,
सूर्य चन्द्र लोकादिक को तू रचता और टिकाता है।
पहले था, अब भी तू ही है घट–घट में व्यापक स्वामी
योग, भक्ति, तप द्वारा तुझको पावें हम अन्तर्यामी ॥

ओ३म् य आत्मदा बलदा यस्य विश्वऽउपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥३॥

यजु० अ० २५, मं० १३

शब्दार्थ – ***यः*** – *जो,* ***आत्मदाः*** – *आत्मज्ञान का दाता,* ***बलदाः*** – *शरीर, आत्मा और समाज के बल का देने हारा,* ***यस्य*** – *जिसकी,* ***विश्वे*** – *सब,* ***देवाः*** – *विद्वान लोग,* ***उपासते*** – *उपासना करते हैं, और,* ***यस्य*** – *जिसका,* ***प्रशिषम्*** – *प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन, न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं,* ***यस्य*** – *जिसका,* ***छाया*** – *आश्रय ही,* ***अमृतम्*** – *मोक्ष सुखदायक है,* ***यस्य*** – *जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही,* ***मृत्युः*** – *मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस,* ***कस्मै*** – *सुखस्वरूप,* ***देवाय*** – *सकल ज्ञान के देने वाले परमात्मा की प्राप्ति के लिये,* ***हषिषा*** – *आत्मा और अन्तःकरण से,* ***विधेम*** – *भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने मे तत्पर रहें।*

तू ही आत्मज्ञान बल–दाता, सुयश विद्वत जन गाते हैं,

आघार का अर्थ है गोघृत की लम्बी धारा यज्ञाग्नि में डालना।
[शत०४-२+ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका-महर्षि]

तेरी चरण–शरण में आकर, भव–सागर तर जाते है।
तुझ को ही जपना जीवन है, मरण तुझे बिसराने में,
मेरी सारी शक्ति लगे प्रभु ! तुझ से लगन लगाने में॥

**ओ३म् यः प्राणतो निमिषतो महित्वैकऽइद्राजा जगतो बभूव।
यऽईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥४॥**

यजु० अ० २३, मं० ३

शब्दार्थ – **यः** – *जो,* **प्राणतः** – *प्राण वाले और,* **निमिषतः** – *अप्राणिरूप,* **जगतः** – *जगत् का,* **महित्वा** – *अपने अनन्त महिमा से,* **एक इत्** – *एक ही,* **राजा** – *राजा,* **बभूव** – *विराजमान है,* **यः** – *जो,* **अस्य** – *इस,* **द्विपदः** – *मनुष्यादि और,* **चतुष्पदः** – *गौ आदि प्राणियों के शरीर की,* **ईशे** – *रचना करता है, हम लोग उस,* **कस्मै** – *सुखस्वरूप,* **देवाय** – *सकलैश्वर्य के देने हारे परमात्मा की उपासना के लिये,* **हविषा**– *अपनी सकल उत्तम साम्रमी से,* **विषेम** – *विशेष भक्ति करें।*

तूने अपनी अनुपम माया से जग–ज्योति जगाई है,
मनुज और पशुओं को रचकर निज महिमा प्रगटाई है।
अपने हिय–सिंहासन पर श्रद्धा से तुझे बिठाते हैं,
भक्ति–भाव की भेंटें लेकर तब चरणों में आते हैं॥

**ओ३म् येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्व स्तभितं येन नाकः।
योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥५॥**

यजु० अ० ३२, मं० ६

शब्दार्थ – **येन** – *जिस परमात्मा ने,* **उग्रा** – *तीक्ष्ण स्वभाव वाले,* **द्यौः** – *सूर्य आदि,* **च** – *और,* **पृथिवी** – *भूमि का,* **दृढा** – *धारण,* **येन** – *जिस जगदीश्वर ने,* **स्वः** – *सुख को,* **स्तभितम्** – *धारण और,* **येन** – *जिस ईश्वर ने,* **नाकः** – *दुख रहित मोक्ष को धारण किया है,* **यः** – *जो,* **अन्तरिक्षे** – *आकाश*

गोघृत की धारा प्रवाह आहुति देवयज्ञ (हवन) का प्राण होती है।
[शत० १-६-२-३९]

में, **रजसः** *– सब लोक–लोकान्तरों को,* **विमानः** *– विशेष मानयुक्त, अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, वैसे सब लोकों को निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस,* **कस्मै** *– सुखदायक,* **देवाय** *– कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिये,* **हविषा** *– सब सामर्थ्य से,* **विधेम** *– विशेष भक्ति करें।*

तारे, रवि, चन्द्रादिक रचकर निज प्रकाश चमकाया है,
धरणी को धारणकर तूने कौशल अलख लखाया है।
तू ही विश्व–विधाता, पोषक, तेरा ही हम ध्यान धरें,
शुभ भाव से भगवन् ! तेरे भजनामृत का पान करें॥

ओ३म् प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥६॥

ऋ० मं० १०, सू० १२१, मं० १०

शब्दार्थ –हे प्रजापते *– सब प्रजा के स्वामी परमात्मा,* **त्वम्** *– आप से,* **अन्यः** *– भिन्न दूसरा कोई,* **ता** *– उन,* **एतानि** *– इन,* **विश्वा** *– सब,* **जातानि** *– उत्पन्न हुए जड़ चेतनादिकों को,* **न**– *नहीं,* **परि, बभूव** *– तिरस्कार करता है, अर्थात् आप सर्वोपरि हैं,* **यत्कामाः** *– जिस–जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग,* **ते** *– आपका,* **जुहुमः** *– आश्रय लेवें और वाञ्छा करें,* **तत्**– *वह कामना,* **नः** *– हमारी सिद्ध,* **अस्तु** *– होवे, जिससे,* **वयम्** *– हम लोग,* **रयीणाम्** *– धनैश्वर्यों के,* **पतयः** *– स्वामी,* **स्याम** *– होवें।*

तुझसे भिन्न न कोई जग में, सब में तुही समाया है,
जड़–चेतन सब तेरी रचना, तुझ में आश्रय पाया है।
हे सर्वोपरि विभो ! विश्व का तूने साज सजाया है
हेतु रहित अनुराग दीजिये यही भक्त को भाया है॥

ओ३म् स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥७॥

यज्ञ करने वाले का घर धनधान्य से परिपूर्ण और कमल-खिले सरोवर के समान सदा शोभायमान रहता हैं

[होतृसदनं हरितं हिरण्यम्-अथर्व० ७-९९-१]

Chitra Mudralya-03

यजु० अ० ३२, मं० १०

शब्दार्थ –हे *मनुष्यो* **सः** *– वह परमात्मा,* **नः** *– अपने लोगों का,* **बन्धुः** *– भ्राता के समान सुखदायक,* **जनिता** *– सकल जगत् का उत्पादक,* **सः** *– वह,* **विधाता** *– सब कामों का पूर्ण करने वाला,* **विश्वा** *– संपूर्ण,* **भुवनानि** *– लोकमात्र और,* **धामानि**– *नाम, स्थान, जन्मों को,* **वेद** *– जानता है, और,* **यत्र** *– जिस,* **तृतीये** *– सांसारिक सुख–दुःख से रहित नित्यानन्दयुकत,* **धामन्** *– मोक्षस्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में,* **अमृतम्** *–मोक्ष को,* **आनशानाः** *– प्राप्त होके,* **देवाः** *– विद्वान् लोग,* **अध्यैरयन्त** *– स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं, वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है, अपने लोग मिल के सदा उसकी भक्ति किया करें।*

तू गुरु है, प्रजेश भी तू है, पाप-पुण्य फल-दाता है,
तू ही सखा, बन्धु मम तू ही, तुझ से ही सब नाता है।
भक्तों को इस भव-बन्धन से, तू ही मुक्त कराता है,
तू है अज, पर्वत, महाप्रभु, सर्वकाल का ज्ञाता है॥

**ओ३म् अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमऽउक्तिं विधेम॥ ८॥**

यजु० अ० ४०, मं० १६

शब्दार्थ –हे अग्ने *– स्वप्रकाशक ज्ञानस्वरूप सब जगत् के प्रकाश करने हारे,* **देव** *– सकल सुखदाता परमेश्वर ! आप जिससे,* **विद्वान्** *– सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं, कृपा करके,* **अस्मान्** *– हम लोगों को,* **राये** *– विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये,* **सुपथा** *– अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से,* **विश्वानि** *– संपूर्ण,* **वयुनानि** *– प्रज्ञान और उत्तम कर्म,* **नय** *– प्राप्त कराइये, और,* **अस्मत्** *– हम से,* **जुहुराणम्** *– कुटिलतायुक्त,* **एनः** *– पापरूप कर्म को,* **युयोधि** *– दूर कीजिये, इस कारण हम लोग,* **ते** *– आपकी,* **भूयिष्ठाम्** *–*

दाता सौभाग्यशाली होते हैं, उनके घर धन से भरे रहते हैं। वहां परोपकारी, दीर्घायु पुत्र-पौत्र उत्पन्न होते हैं। [ऋक्० ५-४२-८]

बहुत प्रकार की स्तुतिरूप, ***नमउक्तिम्***– *नम्रतापूर्वक प्रशंसा,* ***विधेम*** – *सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें।*

तू है स्वयं प्रकाशरूप प्रभु, सबका सिरजनहार तूही,
रसना निशि–दिन रटे तुम्हीं को, मन में बसना सदा तुम्ही।
अघ – अनर्थ ने हमें बचाते रहना, हरदम दयानिधान!
अपने भक्त–जनों को भगवन् ! दीजे यही विशद् वरदान॥

इतीश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाप्रकरणम्॥

सृष्टि यज्ञ के करने से परमात्मा सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान्-अनन्त-निर्विकार -निराकार ओर सामर्थ्यवान् है। यज्ञ शुभकर्मो में पहला श्रेष्ठ कर्म है।

[ऋक् ८-२३-३२]

स्वस्तिवाचनम्

ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम् ॥१॥ ऋ०१–१–१

शब्दार्थ –***पुरोहितम्*** – *जो सृष्टि रचना से पूर्व ही 'हित' अर्थात् विद्यमान था उसकी,* ***यज्ञस्य*** – *सृष्टि रचना रूप यज्ञ का,* ***देवम्*** – *जो प्रकाशक है उस देव की,* ***ऋत्विजं*** – *ऋतु, अर्थात् सर्गकाल प्राप्त होने पर सृष्टि–यज्ञ का जो विधाता अर्थात् ऋत्विज् है उसकी,* ***होतारम्*** – *सृष्टि–यज्ञ के होता, अर्थात् सृष्टि के निमित्त–कारण की,* ***रत्नधातमम्*** – *रमणीय ग्रह–उपग्रहयुक्त ब्रह्माण्ड को धारण करने वाले की,* ***अग्निम्*** – *सबके प्रेरक सृष्टि–यज्ञ के नेता की (ईडे) मैं स्तुति करता हूँ।*

भावार्थ – मैं यज्ञ के प्रारम्भ में इस महान् सृष्टि–यज्ञ के प्रकाशक, विधाता और उसके धारण करने वाले प्रकाश स्वरूप प्रभु की स्तुति करता हूँ।

ओ३म् सं नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥२॥ ऋ० १–१–६

शब्दार्थ –***सः*** – *वह, अर्थात् आप,* ***अग्ने*** – *हे प्रकाशस्वरूप प्रभो!,* ***नः*** – *हमारे लिये,* ***सूपायनः*** – *उत्तम भोग्य पदार्थों को देने वाले,* ***भव*** – *हूजिये,* ***पिता इव*** – *पिता के समान,* ***सूनवे*** – *पुत्र के लिये,* ***नः*** – *हमको,* ***स्वस्तये*** – *कल्याण की प्राप्ति के लिये,* ***सचस्व*** – *योग्य पदार्थों से युक्त कीजिये।*

भावार्थ – आप हमारे लिये उसी प्रकार **'सूपायन'**–अर्थात् सुगमता से जिसके पास जाया जा सके–ऐसे हूजिये, जैसे पिता के पास पुत्र अपनी प्रार्थना लेकर झट से बिना झिझक के चला जाता है। हम आपके द्वारा दिये

"यज्ञो वै विश्वस्य नाभिः" यज्ञ विश्व की नाभि है।
[अथर्व० १-१०-१४ , यजु०२३-६२]

गये पदार्थों से **'स्वस्तये'**—कल्याण को प्राप्त हों, उनका अपनी भलाई के लिये उपयोग करें।

ओ३म् स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना॥३॥

ऋ० ५–५१–११

शब्दार्थ —***भगः*** — *सेवा के योग्य भगवान् तथा,* ***अश्विनौ*** — *सृष्टि में सूर्य और चन्द्र तथा समाज में अध्यापक तथा उपदेशक,* ***नः*** — *हमारा,* ***स्वस्ति*** — *कल्याण,* ***मिमीताम्—माङ् माने*** — *मापकर करें—उतना करें जितने के हम योग्य हों,* ***देवी*** — *दिव्य गुणवाली,* ***अदितिः*** — *पृथिवी,* ***अनर्वणः—ऋ गतौ=अर्वणः=गतिमान, अनर्वणः =गतिरहित*** — *पर्वत,* ***स्वस्ति*** — *हमारा कल्याण करें,* ***असुरः*** — *जीवनदाता,* ***पूषा*** — *मेघ,* ***नः*** — *हमें,* ***स्वस्ति दधातु*** — *कल्याण देवे,* ***द्यावापृथिवी*** — *प्रकाशक तथा प्रकाश्यलोक,* ***सुचेतुना*** — *उत्तम ज्ञान से,* ***स्वस्ति*** — *हमारा कल्याण करें।*

भावार्थ — हे प्रभो ! सूर्य—चन्द्र, धन—सम्पत्ति, पृथिवी, पर्वत, पुष्टिकर्ता, मेघ और प्रकाशक—प्रकाश्यलोक— ये सभी हमारे लिये कल्याणकारी हों।

ओ३म् स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः॥४॥

ऋ० ५–५१–१२

शब्दार्थ —***स्वस्तये*** — *कल्याण के लिये,* ***वायुम्*** — *वायु को,* ***सोमम्*** — *सोम को,* ***यः भुवनस्य पतिः*** — *भुवनों का जो पति सूर्य है, इन्हें,* ***स्वस्ति उपब्रवामहै*** — *हम अपने समीप बुलाते हैं, अर्थात् इनके गुणों का ज्ञान कर उनका सम्यक् उपयोग लेते हैं,* ***सर्वगणं बृहस्पतिं स्वस्तये उपब्रवामहै*** — *गण—समुदाय अर्थात् शिष्यों—प्रशिष्यों सहित बृहस्पति—महती विद्या के पालक आचार्य को भी अपने कल्याण के लिये हम पुकारते हैं।,* ***आदित्यासः*** — *आदित्य के समान*

राजा के पुरोहित का ज्ञान और बल उत्तम हो। वह कभी राजा को हतोत्साहित न होने दे, जिससे वह राष्ट्र के कल्याण में लगा रहे।

[अथर्व० ३-१९-१]

ज्ञान–ज्योतिर्मय व्यक्ति, ***नः स्वस्तये भवन्तु*** *– हमारे कल्याण के लिये हों।*

भावार्थ – हे प्रभो ! हम कल्याण के लिये वायु, सोम और भुवन के पति सूर्य का आह्वान करते हैं, अर्थात् इनके गुण–ज्ञान द्वारा सदुपयोग लेते हैं। वेद–ज्ञान के रक्षक आचार्य को भी कल्याण के लिये हम पुकारते हैं। श्रेष्ठ ज्ञानी पुरुष हमारे लिये कल्याणकारी हों।

ओ३म् विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहस ॥५॥

ऋ० ५–५१–१३

शब्दार्थ –***अद्य*** *– आज,* ***विश्वे देवाः*** *– सम्पूर्ण देव–ज्ञानीजन,* ***नः*** *– हमारे,* ***स्वस्तये*** *– कल्याण के लिये हों,* ***वैश्वानरः*** *– अध्यात्म अर्थ में सब नरों का हितकारी, आधिभौतिक–अर्थ में सम्पूर्ण प्राणियों के शरीरों को गति देने वाला,* ***वसुः अग्निः*** *– अध्यात्म अर्थ में सबको बसाने वाला ज्ञानस्वरूप परमेश्वर, आधिभौतिक–अर्थ में अपने स्वरूप में स्थिर रहने वाला आहार का पाचक अग्नि,* ***स्वस्ति*** *– हमारे कल्याण के लिये हो,* ***ऋभवः देवाः*** *– स्वरूप से प्रकाश–धर्म वाले दिव्य पदार्थ सूर्य, विद्युत, अग्नि,* ***स्वस्तये अवन्तु*** *– कल्याण के लिये हमारी रक्षा करें,* ***स्वस्ति रुद्रः*** *– विश्व के कल्याण के लिये पापियों को रुलाने वाला रुद्र,* ***नः*** *– हमारी,* ***अंहसः*** *– पाप से,* ***पातु*** *– रक्षा करे।*

भावार्थ – हे प्रभो ! सब ज्ञानीजन हमें कल्याण का उपदेश दें। वैश्वानर, वसु, आहार का पाचक अग्नि हमारे लिये कल्याणकारी हो। स्वरूप से प्रकाश–धर्मवाले अग्नि, विद्युत, सूर्यरूपी दिव्य–शक्तियां कल्याण के लिये हमारी रक्षा करें और परमात्मा का रुद्र (कठोर) रूप भी कल्याण के लिये हमारी रक्षा करे।

परमेश्वर सृष्टि यज्ञ का पुरोहित-यजमान और ऋत्विक् स्वयं है।

[अग्निमीले पुरोहितं० १-१-१, ऋग्वेद प्रथम मंत्र]

ओ३म् स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि॥६॥

ऋ० ५–५१–१४

शब्दार्थ –***मित्रावरुणौ*** – *प्राण और अपान हमारे लिये,* ***स्वस्ति*** – *कल्याणकारी हों,* ***पथ्ये*** – *मार्गों पर निष्कंटक विचरने वाली,* ***रेवती*** – *ऐश्वर्यों से पूर्ण गौएं,* ***स्वस्ति*** – *हमारे लिये कल्याणकारी हों,* ***इन्द्रश्च अग्निश्च*** – *सूर्य और अग्निरूप विद्युत्,* ***स्वस्ति*** – *हमारे लिए कल्याणकारी हो,* ***अदिते*** – *हे पृथिवी !,* ***स्वस्ति नः कृधि*** – *हमारे लिये कल्याण कर।*

भावार्थ – हे प्रभो ! प्राण–अपान, मार्गों पर निष्कंटक विचरने वाली गौएं, सूर्य, विद्युत् और पृथिवी हमारे लिये कल्याणकारी हों।

ओ३म् स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि॥७॥

ऋ० मं० ५, सू० ५१, मंत्र –१५

शब्दार्थ – ***सूर्याचन्द्रमसौ इव*** – *सूर्य और चन्द्र के समान,* ***स्वस्ति पन्थां*** – *कल्याणकारी मार्ग का,* ***अनुचरेम*** – *हम अनुसरण करें,* ***पुनः*** – *और उक्त बात के साथ हम,* ***ददता*** – *देने वाले दाता के साथ,* ***अघ्नता*** – *हनन न करने वाले के साथ,* ***जानता*** – *ज्ञान पूर्वक कार्य करने वाले के साथ,* ***संगमेमहि*** – *संगति करें।*

भावार्थ – इस मंत्र में प्रभु से दो प्रार्थनाएँ की गई हैं। पहली यह कि जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र संसार के कल्याण के लिये अटल मार्ग पर दिन–रात चले जा रहे हैं, वैसा ही उनके अनुरूप हमारा जीवन हो। दूसरी प्रार्थना पहली प्रार्थना के परिणामस्वरूप की गई है कि हमारा संग उन लोगों के साथ हो जो सूर्य–चन्द्र के समान देने वाले हैं, सूर्य–चन्द्र के समान किसी को नुकसान नहीं पहुंचाते, जिनका कार्य

"सत्योपदेश एव संन्यासिनां ब्रह्मयज्ञः" देवयज्ञो ब्रह्मोपासनं च" सत्य का उपदेश करना ही संन्यासियों का ब्रह्मयज्ञ है और वेद का प्रचार करना देवयज्ञ(हवन) कहाता है।[पृष्ठे १९० ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका-महर्षिदयानन्द शत० - महर्षि याज्ञवल्क्य]

सूर्य–चन्द्र के समान अनजाने भी जाने के समान है। इस प्रकार हमारा जीवन प्रकृति की महान् शक्तियों–सूर्य–चन्द्र के साथ एकतान हो, सूर्य–चन्द हमारे मित्र–समान हों।

ओ३म् ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥८॥

ऋ० मं० ७, सू० ३५, मंत्र १५

शब्दार्थ –*ये – जो,* ***यज्ञियानाम् देवानाम् यज्ञियाः*** *– महानुभाव पूजनीय दिव्य गुणों के व्यक्तियों में से भी अधिक पूजनीय हैं,* ***मनोः*** *– मनुष्य मात्र के,* ***यजत्राः*** *– आदरणीय हैं,* ***अमृताः*** *– अमर यश वाले हैं,* ***ऋतज्ञाः*** *– सत्य के जानने वाले विद्वान् हैं,* ***ते नः*** *– वे हमें,* ***अद्य*** *– आज,* ***उरुगायम्*** *– प्रशंसा के योग्य महान् यश को,* ***रासन्ताम्*** *– प्रदान करें और,* ***यूयम्*** *– ऐसे आप लोग आज ही नहीं,* ***सदा*** *– हर काल में,* ***नः स्वस्तिभिः पात*** *– हमारी अपने कल्याणकारी उपदेशों के द्वारा रक्षा करें।*

भावार्थ – संगति करने योग्य मानवों के मध्य में जो संगति के योग्य उत्कृष्ट पुरुष, आदरणीय, अमर यशस्वी और सत्य के जानने वाले विद्वान् हैं, वे हमें महान् कल्याणकारी उपदेशों द्वारा हमारा मार्गदर्शन करते रहें।

ओ३म् येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः।
उक्थशुष्मान वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये॥६॥

ऋ० १०–६३–३

शब्दार्थ –***येभ्यः*** *– जिनके लिये,* ***माता*** *– पृथिवी माता,* ***मधुमत् पयः*** *– मिठासयुक्त रस को,* ***पिन्वते*** *– प्रदान करती है,* ***येभ्यः द्यौः पीयूषम्*** *– और जिनके लिये द्युलोक अमृत को प्रदान करता है,* ***येभ्यः अदितिः*** *– जिनके लिये अखंडनीय अन्तरिक्ष,* ***अद्रिबर्हाः पिन्वते*** *– मेघों से भरपूर रस को प्रदान करता है,* ***तान्*** *– उन,* ***उक्थशुष्मान्*** *– प्रशंसनीय बल वालों,*

यज्ञ अन्न का हेतु है। अन्न से राष्ट्र समृद्ध होता है।
[ऋक् ६-६१-१४+शत० ६-१-२-२५+गीता ३-१४]

वृषभरान् – *सुखों की वर्षा करने वालों,* ***स्वप्नसः*** – *शुभ कर्म करने वालों–****आदित्यान्*** – *पुत्रों के,* ***स्वस्तये*** – *कल्याण के लिये हे प्रभो !,* ***अनुमद*** – *आप हर्ष का आमोदन कीजिये।*

भावार्थ – हे प्रभो ! प्रशंसनीय बल वाले, सुखों की वर्षा करने वाले और शुभ कर्म करने वाले जिन मानव–श्रेष्ठों के लिए यह पृथिवी, यह द्युलोक और मेघों से भरपूर यह अन्तरिक्ष लोक मधुर रस प्रदान करते हैं, उन 'अदिति'=देवमाता जगज्जननी के श्रेष्ठ पुत्रों के कल्याण के लिये आप मुदित–हर्षित हूजिये।

**ओ३म् नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये॥१०॥**

ऋ० १०–६३–४

शब्दार्थ – ***नृचक्षसः*** – *जिनकी आंख हर मानव की भलाई पर लगी हुई है,* ***अनिमिषन्तः*** – *बिना निमेष के–पलक के झपकने के बिना जो मानव की भलाई पर टकटकी लगाये हैं,* ***अर्हणः*** – *ऐसे जो पूजा के योग्य,* ***बृहत् देवासः*** – *महान् विद्वान् लोग हैं वे,* ***अमृतत्वं*** – *अमरता को,* ***आनशुः*** – *प्राप्त होते हैं। ऐसे,* ***ज्योतिरथाः*** – *प्रकाश–पथ में रमण करने वाले,* ***अहिमायाः*** – *अहिंसनीय माया वाले,* ***अनागसः*** – *पापरहित पुरुष,* ***स्वस्तये*** – *जगत के कल्याण के लिये,* ***दिवः*** – *द्युलोक से भी,* ***वर्ष्माणम्*** – *और अधिक ऊँचे पद पर,* ***वसते*** – *प्रतिष्ठित होते हैं।*

भावार्थ – जो मानव की भलाई पर लगातार दृष्टि रखते हैं ऐसे सदा सावधान प्रकाश–पथ में विचरने वाले, अहिंसा व्रत वाले, विद्वान–पुरुष जीवन में सर्वोच्च पद प्राप्तकर अमर हो जाते हैं। ऐसे पुरुष जगत् के कल्याण के लिए ही उत्पन्न होते हैं।

**ओ३म् सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम्।
ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये॥११॥**

ऋ० १०–६३–४

वेद मंत्र पदार्थविज्ञान का ज्ञान कराते हैं जिससे हम उत्तम सफल शिल्पी बनते हैं। **[ऋक् ९-६७-३२, ऋक् ७-९४-२]**

शब्दार्थ –**ये** – *जो,* **सम्राजः** – *प्रकाशमान, यशस्वी तथा,* **सुवृधः** – *बढ़ती वाले उन्नतिशील व्यक्ति,* **यज्ञम्** – *शुभ कर्म में,* **आययुः** – *आये हैं, और,* **ये अपरिह्वृताः** – *जो वीरजन बिना हार माने,* **दिवि** – *स्वर्ग लोक में,* **क्षयम् दधिरे** – *निवास बना बैठे हैं,* **तान्** – *अर्थात् जो जीवित हैं और जो मृत हो गये उन सब,* **महः आदित्यान्** – *आदित्य के समान महान् यशस्वियों का,* **नमसा** – *नमस्कार द्वारा तथा,* **सुवृक्तिभिः** – *प्रशंसनीय वचनों द्वारा,* **आविवास** – *भलीभांति सम्मान करो और,* **अदितिम्** – *भू–माता के,* **स्वस्तये** – *कल्याण के लिये जीवित तथा मृत यशस्वी व्यक्तियों को नमस्कार करो और उनका यश गान करो।*

भावार्थ – हे मानवो ! जो शुभ गुणों से प्रकाशमान–यशस्वी, दूसरों की उन्नति चाहने वाले, शुभ कर्मों मे प्रवृत्त होते हैं, भले ही वे इस यज्ञ में पधारे हैं या वीर गति प्राप्त कर चुके हैं, ऐसे जगज्जननी के श्रेष्ठ पुत्रों को धरती माता का यश निरन्तर बनाये रखने के लिये नमस्कार करो और उनकी यश–गाथाओं को गाओ।

ओ३म् को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥१२॥

ऋ० १०–६३–४

शब्दार्थ –**विश्वे देवासः मनुषः** – *हे सकल विद्वान् पुरुषो !,* **यतिष्ठन** – *जितने भी तुम हो, वे सब सोचो कि,* **यं जुजोषथ** – *जिसकी तुम स्तुति करते हो वह,* **कः** – *कौन है,* **वः** – *जो तुम लोगों के,* **स्तोमं** – *स्तुति वाक्यों को, प्रार्थनाओं को,* **राधति** – *सिद्ध करता है, सफल बनाता है वह कौन है,* **तुविजाता** – *हे अपरिमित ज्ञान वालों या अनेक जन्म धारण करने वालो !,* **वः** – *तुम लोगों के,* **अध्वरम्** – *यज्ञ को,* **कः अरं करत्** – *कौन देव अलंकृत करता या पूर्ण करता है ? इस प्रश्न को उठाकर*

परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभावानुरूप सहस्रों नाम हैं।

[ऋक् १-१६४-४६]

मंत्र में ही उत्तर दिया है, ***यः*** *– जो,* ***नः*** *– हमारे,* ***अंहः*** *– पाप को,* ***पर्षदत्*** *– दूर करता है*

भावार्थ – हे विद्वानो ! आप लोग जिसकी स्तुतियां करते हैं उन्हें कौन सुनता है, किसके सुनने से प्रार्थनाएँ फलीभूत होती हैं? तुमने अनेक जन्म लिये, हर जन्म में नया–नया ज्ञान प्राप्त किया, अनेक यज्ञ–रूप कर्मों को तुम इस जन्म में करते हो, जन्म–जन्मान्तर से भी करते आ रहे हो– यह सब किसके लिये करते हो। मंत्र में ही इस प्रश्न का उत्तर निहित करते हुए कहा है– तुम्हारे पापों को वही दूर कर तुम्हारी प्रार्थनाओं को सफल बनाता है।

ओ३म् येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये॥१३॥

ऋ० १०–६३–४

शब्दार्थ – ***मनु*** *– मनस्वी ने,* ***मनसा सप्तहोतृभिः*** *– मन तथा सातों इन्द्रियों के रूप में 'होता' बनकर,* ***येभ्यो*** *– जिन शुद्ध पदार्थों को प्राप्त करने के लिये,* ***प्रथमाम् होत्राम्*** *– सर्व–श्रेष्ठ यज्ञ–कर्म को,* ***आयेजे*** *– आयोजित किया,* ***ते आदित्याः*** *– वे यज्ञ तथा सूर्य की रश्मियों से शुद्ध हुए पदार्थ,* ***अभयं शर्म*** *– भय–रहित आश्रय वा सुख को,* ***यच्छत*** *– प्रदान करें तथा,* ***नः*** *– हमारा,* ***सुगा सुपथा*** *– जीवन का सुगम मार्ग,* ***स्वस्तये कर्त*** *– कल्याण साधने के लिये करें।*

भावार्थ – हे प्रभो ! जिन मनस्वियों ने दो आंख, दो कान, दो नासिका तथा एक मुख–इन सात इन्द्रियों को तथा मन को होता बनाकर संसार के पदार्थों को अग्नि से शुद्ध करने के लिये जो यज्ञ रचा उससे तथा आदित्य की रश्मियों से शुद्ध हुए पदार्थों का सेवन कर हम सुखी हों और हमारा जीवन का मार्ग कल्याणमय हो। इस मंत्र का यह भी अभिप्राय है कि यज्ञाग्नि से भोग्य–पदार्थों की शुद्धि होती है, उनके कीटाणुओं का नाश होकर वे सेवन योग्य हो जाते हैं।

पुष्ट-मिष्ट-सुगन्धित-स्वास्थ्यवर्धक यज्ञधूम से सूर्य-विद्युत्-जल-वायु-चन्द्र वन-पर्वत-आकाश वनस्पति और दिशाएं हविष्मान् रहती हैं जिससे पृथ्वी के रक्षा कवच [ओजोन परत] को शक्ति मिलती है।

[यजु० ६-२३+ऋक् १-३९-९+अथर्व० ३-२१-१०]

ओ३म् य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः। ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये॥१४॥

ऋ० १०—६३—८

शब्दार्थ – ये मन्तवः – *जो मननशील ज्ञानी पुरुष,* **प्रचेतसः** – *उत्कृष्ट ज्ञान वाले,* **स्थातुः** – *स्थावर तथा,* **जगतश्च भुवनस्य** – *जंगम विश्व के,* **ईशिरे** – *स्वामी हैं,* **ते** – *वे,* **देवासः** – *देव,* **नः** – *हमारे,* **कृतात्** – *किये हुए तथा,* **अकृतात्** – *न किये हुए,* **एनसः** – *पाप से,* **अद्य** – *आज,* **स्वस्तये** – *हमारे कल्याण के लिये,* **परि पिपृत** – *सब ओर से हमें बचायें।*

भावार्थ – हे प्रभो ! जो मननशील ज्ञानी पुरुष इस स्थावर तथा जंगम जगत् के स्वामी हैं ऐसे उत्कृष्ट मेधावी लोग –पापकर्मों से हमें बचायें। किये हुए पाप कर्मों का फल अवश्य भोगना होगा, उस भोग से कोई बच नहीं सकता। प्रभो! हमें ऐसी शक्ति ज्ञान दो जिससे हम पाप कर्म न कर सकें।

ओ३म् भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्। अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये॥१५॥

ऋ० १०—६३—६

शब्दार्थ –भरेषु – *सांसारिक संग्रामों, संघर्षों में,* **इन्द्रम्** – *महाबलवान् को,* **सुहवम्** *–सहज में पुकार सुनने हारे को,* **अंहोमुचम्** – *पापों या कठिनाइयों से छुड़ाने हारे को,* **सुकृतम्** – *सुकर्मी को,* **दैव्यम् जनम्** – *विद्वान जनों के हितकारी जन को,* **अग्निम्** – *अग्नि समान तेजस्वी,* **मित्रम्** – *हितकारी,* **वरुणम्** – *श्रेष्ठ,* **भगम्** – *ऐश्वर्य वाले,* **द्यावापृथिवी** – *द्युलोक और पृथिवीलोक,* **मरुतः** – *अन्तरिक्ष स्थानीय दिव्य शक्तियों को,* **सातये** – *लाभ के लिये और,* **स्वस्तये** – *हमारे कल्याण के लिये,* **हवामहे** – *हम पुकारते हैं।*

भावार्थ – हे प्रभो ! जीवन में संघर्षों तथा कठिनाइयों के सामने आ पड़ने पर महाबलवान्, परदुःखहर्ता, पापों से बचाने

वेदविद्या वेदज्ञ ब्राह्मण से बोलीः- मेरी रक्षा कर-मैं तेरी निधि (खजाना)हूँ। झूठीनिन्दा करने वाले,कुटिल क्रोधी को, इन्द्रियों के गुलाम को मुझे न दे- इससे मैं तेरी बलवती दासी रहूँगी। [निरुक्त २-४]

वाले, उत्तम कर्म करने वाले, तेजस्वी, सबके मित्र, पूज्य पुरुषों की हम साहाय्य चाहते हैं। ऐसे पुरुषों द्वारा मार्ग–दर्शन होने पर पृथिवी, द्यु–लोक और अन्तरिक्षस्थ दिव्य–शक्तियां हमारे कल्याण के लिये होंगी।

ओ३म् सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिं। दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥१६॥

ऋ० १०–६३–१०

शब्दार्थ – ***सुत्रामाणम्*** *– अच्छी प्रकार रक्षा करने वाली को,* ***पृथिवीम्*** *– फैली हुई अर्थात् विस्तीर्ण को,* ***द्याम्*** *– प्रकाशयुक्त को,* ***अनेहसम्*** *– त्रुटिरहित, अटूट को,* ***सुशर्माणम्*** *– अत्यन्त सुख देने वाली को,* ***सुप्रणीतिम्*** *– अच्छे प्रकार बनाई हुई को या उच्चकोटि के आचार–शास्त्र वाली को,* ***अदितिम्*** *– अकस्मात् नष्ट न होने वाली को या अदीन वेद–विद्या रूप को,* ***दैवीं नावम्*** *– विद्वानों से निर्मित की हुई नौका या दिव्य उपदेशों से पूर्ण वेद–विद्या को,* ***अस्रवन्तीम्*** *– न चूनेवाली नौका या सनातन सदाचार का उपदेश देने वाली वेद–विद्या को,* ***स्वस्तये आरुहेम*** *– अपने कल्याण के लिये हम उस पर आरूढ़ हों।*

भावार्थ – इस मंत्र में 'नाव' शब्द का तीन अर्थों में प्रयोग किया गया है। स्थूल अर्थ में हम ऐसी नौका पर बैठें जो छिद्र रहित हो, चूने वाली न हो, त्रुटिरहित हो, ठीक से बनी हुई हो–यह पहला अर्थ है; नाव का प्रयोग यहां अपने शरीर के लिये भी किया गया है– हमारे शरीर की नौका सुदृढ़ हो, त्रुटि रहित हो, भवसागर से पार तरा ले जाने वाली हो– यह दूसरा अर्थ है; नाव का प्रयोग यहां वेद–विद्या के लिये भी किया गया है– वेद का ज्ञान हमारे कल्याण के लिये हो, हमारी तरफ से उसके पालन में कोई त्रुटि न हो ताकि उससे हम भव–सागर को पार करें।

ऋतम्भरा प्रज्ञा (बुद्धि) दूध की हजारों धाराओं वाली कामधेनु है।
[यजु०१७-७४+सामवेद "सहस्रधारां."]

ओ३म् विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिहुतः।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥१७॥

ऋ० १०–६३–११

शब्दार्थ –**विश्वे** – सब, **यजत्राः** – पूजनीय श्रेष्ठ पुरुषो !, **ऊतये** – रक्षा के लिये, **अधि** – अधिकारपूर्वक, **वोचन** – उपदेश–वचन–दो, **अभिहुतः** – दुःख देने वाली से, **दुरेवायाः** – दुर्गति से, **नः त्रायध्वम्** – हमारा त्राण करो, **देवाः** – हे विद्वान् जनो!, **सत्यया देवहूत्या शृण्वतः वः** – सच्ची टेर सुनने वालों को, **अवसे** – रक्षा के लिये, **स्वस्तये** – कुशल कल्याण के लिये, **हुवेम** – हम पुकारते हैं।

भावार्थ – हे श्रेष्ठ पुरुषो ! आप हमें आपदाओं से बचाओ। अपनी रक्षा और कल्याण के लिये हम आपको पुकारते हैं।

ओ३म् अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥१८॥

ऋ० १०–६३–१२

शब्दार्थ –***विश्वाम् अमीवाम् अप*** – *हमारे सब रोगों को दूर कर,* ***अनाहुतिं अप*** – *हमारी यज्ञ न करने की भावना को दूर कर,* ***अरातिं अप*** – *दान न देने की भावना को दूर कर,* ***अघायतः*** – *पाप करने की इच्छा को तथा,* ***दुर्विदत्रां अप*** – *दुष्ट बुद्धि को दूर कर,* ***देवाः*** – *हे देवो !,* ***द्वेषः*** – *द्वेष–बुद्धि,* ***अस्मत्*** – *हमसे,* ***आरे युयोतन*** – *दूर हटाओ,* ***नः*** – *हमें,* ***उरु शर्म*** – *महान् सुख,* ***स्वस्तये यच्छत*** – *कल्याण के लिये दो,*

भावार्थ – हे प्रभो ! आप हमें ऐसी बुद्धि दें जिससे हमारे सब रोग दूर हों, हमारी यज्ञ न करने की, दान न देने की भावना दूर हो, पापी हृदय में पाप करने की जो भावना उठती है वह दूर हो। हम किसी से द्वेष न करें– ये सब याचनाएँ हम इसीलिये करते हैं जिससे हमारा कल्याण हो।

मांगो तो–प्रभु से बुद्धि का उत्तम दान मांगो।

[यजु०३२-१४]

**ओ३म् अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये॥१६॥**

ऋ० १०–६३–१३

शब्दार्थ –*आदित्यासः* *–हे अदिति, ईश्वर के पुत्रो, श्रेष्ठजनो !,* ***यम्*** *– जिस व्यक्ति को तुम,* ***सुनीतिभिः*** *– उत्तम नीति, न्याय्य पथों से,* ***नयच*** *– चलाते हो और उनके,* ***विश्वानि*** *– सब,* ***दुरिता*** *– दुर्गुणों, व्यसनों को,* ***नयथ*** *– दूर करते हो, ऐसा,* ***सः मर्त*** *– वह मनुष्य,* ***अरिष्टः*** *– हिंसित न होता हुआ, हार न मानता हुआ, स्वरूप रूप में,* ***विश्वा*** *– विश्व में,* ***एधते*** *– उन्नति करता है और,* ***धर्मणः परि*** *– धर्म पूर्वक कर्त्तव्य करने के बाद,* ***प्रजाभिः*** *– पुत्र–पौत्र रूपी प्रजाओं के साथ,* ***प्रजायते*** *– फिर–फिर जन्म लेता है या इस जन्म में वृद्धि को प्राप्त करता है।*

भावार्थ – श्रेष्ठ व्यक्ति मानव–समाज को न्यायोचित मार्ग पर चलने की प्रेरणा करते हैं। न्यायोचित मार्ग पर चलने से कष्ट उठाने पड़ते हैं, परन्तु जो व्यक्ति मार्ग के कष्टों का सामना करता हुआ, इस मार्ग पर बढ़ जाता है वह पुत्र–पौत्रों के साथ संसार में आगे–आगे बढ़ता जाता है।

**ओ३म् यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये॥२०॥**

ऋ० १०–६३–१४

शब्दार्थ –*यम् रथम्* *– जिस शरीर रूपी रथ की, या पहियों वाले रथ की,* ***देवासः*** *– विद्वज्जन,* ***वाजसातौ*** *– अन्नादि भोग्य पदार्थों की प्राप्ति तथा उपभोग के लिए,* ***अवथ*** *– रक्षा करते हैं,* ***यम् रथं*** *– जिस शरीर रूपी रथ की या रथ की,* ***मरुतः*** *– शूरवीर लोग,* ***शूरसातौ*** *– युद्ध में वीर योद्धाओं की प्राप्ति तथा,* ***धने हिते*** *– धन पाने के लिए,* ***अवथ*** *– रक्षा करते हैं, हे,* ***इन्द्र*** *– परमात्मन् ! ऐसे,* ***प्रातर्यावाणम् रथम्*** *– प्रातःकाल उठते ही काम में जुट जाने वाले शरीर रूपी रथ या*

**वेद पदार्थों के विज्ञान से प्राणियों की बुद्धि को प्रकाशित करते हैं।
[धियो विश्वा विराजति-ऋक् १-३-१२]**

पहियों वाले रथ पर, ***स्वस्तये आरुहेम*** *– हम अपने कल्याण के लिये सवार हो जायें।* ***सानसिम्*** *– इस रथ से भोग्य–पदार्थ प्राप्त किये जाते हैं, और,* ***अरिष्यन्तम्*** *– वे नष्ट नहीं होते।*

भावार्थ – इस मन्त्र में 'रथ' शब्द का प्रयोग द्वयर्थक है–शरीर रूपी रथ, अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिये। दूसरा दो पहियों वाला रथ जिससे अन्न ढोया जाता है। युद्ध में शरीर रूपी रथ की जरूरत है अन्न–संग्रह में दो पहियों वाले रथ की उपयोगिता है।

ओ३म् स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन॥२१॥

शब्दार्थ –***स्वस्ति नः*** *– हमारा* ***पथ्यासु*** *– राजमार्गों में कल्याण हो,* ***धन्वसु*** *– जल रहित प्रदेशों में,* ***स्वस्ति*** *– कुशल हो,* ***अप्सु*** *– जलीय,* ***वृजने*** *– प्रदेशों में,* ***स्वर्वति*** *–* ***स्वस्ति*** *– कुशल हो,* ***पुत्रकृथेषु योनिषु*** *– पुत्रों को उत्पन्न करने वाली नारियों में,* ***नः स्वस्ति*** *– हमारा कल्याण हो,* ***मरुतः मा–रुतः*** *– हे मनुष्यों ! दुखी होकर मत रोओ,* ***राये*** *– ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये,* ***स्वस्ति दधातन*** *– कल्याण भावना को अपने अन्तःकरण में धारण करो।*

भावार्थ – संसार की गली, जंगल के बीहड़ मार्गों, जलाप्लावित प्रदेशों, निर्जन स्थानों और सुख–सप्पदा से समृद्ध शहरों में हमारा कल्याण करें। हमारी देवियां जो सन्तानों को जन्म देती हैं, हमारे लिये कल्याणी हो ! धन–ऐश्वर्य का हमारे पास अभाव न हो।

ओ३म् स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वस्त्यभि या वाममेति।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा॥२२॥

ऋ० मं० १०, सू० ६३–१६

शब्दार्थ –***प्रपथे*** *– जीवन रूप पथ में,* ***इत् हि*** *– निश्चयपूर्वक,* ***स्वस्तिः*** *– हमारा कुशल हो !,* ***रेक्णस्वस्ति*** *– जो धन–धान्य*

नदियों के संगम और पर्वतों की गुफाओं में ऋतम्भरा प्रज्ञा सम्पन्न मेधावी पुरुष जन्म लेते हैं। **[ऋक् ८-६-२८]**

से पूर्ण हमारा घर है अगर वह, ***वामम् एति*** *– 'वाम' अर्थात् उलट जाता है तब भी वह,* ***श्रेष्ठा*** *– श्रेष्ठ हो जाय–अर्थात् अगर हमारे बुरे दिन आ जायें तो वे भी पलट जायें अथवा,* ***या रेक्णस्वस्ति या श्रेष्ठा*** *–धन–धान्य से पूर्ण हमारा जो सौभाग्य है वह,* ***वामम् एति*** *– और अधिक सुन्दर हो !,* ***सा*** *– वह हमारा सौभाग्य,* ***नः अमा*** *– हमें घर में तथा,* ***सा उ*** *– वह,* ***अरणे*** *– निर्जन वन में,* ***निपातु*** *– हमारी रक्षा करें ! हमारा घर,* ***स्वावेश=सु+आवेश*** *– सुन्दर निवास देने वाला,* ***देवगोपा*** *– विद्वज्जनों की रक्षा का स्थान,* ***भवतु*** *– हो।*

भावार्थ – परमात्मा से प्रार्थना है कि हमारे जीवन का मार्ग कुशलता से निबट जाय। धन–धान्य से पूर्ण हमारे घर में अगर कोई विपत्ति आ पड़े तो वह आपकी कृपा से टल जाय, और अगर हमारा घर हर तरह से सम्पन्न हो तो भी उसके सौन्दर्य में दिनों–दिन वृद्धि हो। हम चाहे घर में हों या निर्जन वन में हों, प्रभु का रक्षा–कवच हमारे सिर पर हो, हमारा घर रहने का सुन्दर स्थान हो जहां विद्वज्जनों का सत्संग होता रहे।

ओ३म् इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा वस्तेनऽईशत माघशꣳसो ध्रुवाऽअस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि॥२३॥

यजु० अ० १, मं० १

शब्दार्थ *–हे परमात्मन् !,* ***वायवः*** *– गतिशील, जीवन–मार्ग में आगे बढ़ने वाले प्राणी,* ***इषे त्वा*** *– अन्न आदि योग्य पदार्थों के लिये आपको,* ***ऊर्जे त्वा*** *– आत्मिक बल प्राप्त करने के लिये भी आपको* ***स्थः*** *– प्राप्त होवें,* ***देवः सविता*** *– शुभ कर्मों में प्रेरणा देने वाला सविता देव,* ***वः*** *– हममें,* ***श्रेष्ठतमाय कर्मणे*** *– अत्युत्तम कर्म की,* ***प्रार्पयतु*** *– उमंग पैदा करे। हमारे घर,*

प्रभु अवर्ण है, निराकार है, अकेला विश्व का आधार है।

[श्वेताश्वतर ४-१, ऋक् ३-४६-२]

अयक्ष्मा: *– क्षय रोग रहित,* ***अनमीवा:*** *– क्षुद्र रोग–रहित,* ***प्रजावती:*** *– बछड़े–बछड़ियों सहित,* ***इन्द्राय*** *– राष्ट्र की उन्नति के लिये,* ***अघ्न्या:*** *– न मारने योग्य गौएं,* ***भागम् आप्यायध्वम्*** *– सेवनीय दूध से भरी हों,* ***व:*** *– उनका,* ***स्तेन:*** *– चोर,* ***मा ईशत*** *–* ***मा अघशंस: ईशत*** *– पाप की इच्छा करने वाला भी उनका स्वामी न होवे,* ***अस्मिन् गोपतौ*** *– मेरे पास में गौएँ,* ***ध्रुवा: स्यात्*** *– स्थिर हों और* ***बह्वी: स्यात्*** *– बहुत हों,* ***यजमानस्य*** *– हे प्रभो ! आप यजमान के,* ***पशून् पाहि*** *– पशुओं की रक्षा करो।*

भावार्थ – हे सर्वरक्षक प्रभो ! हम भोग्य–पदार्थों की प्राप्ति से बल तथा ओज प्राप्ति के लिये आपका आश्रय लेते हैं, हम सदा गतिशील, आगे बढ़ने वाले हों। आप ही सकल ऐश्वर्यों के दाता एवं शुद्ध कर्मों के प्रेरक हो, इसलिये आप ही हमें अत्युत्तम कर्म करने के लिए समस्त वांछित पदार्थ प्राप्त कराओ। हमारी दुधारी गौएँ हृष्टपुष्ट हों और राष्ट्र को दूध–धृत आदि समस्त सेवनीय पदार्थ प्राप्त करायें। हमारी गौएँ उत्तम बछड़े–बछड़ी जनने वाली हों, क्षय जैसे रोगों से रहित हों, इन पर कोई चोर या पापी पुरुष शासन न करे। हम जो गौओं का पालन करने हारे हैं उनके पास गौएँ स्थिर रूप में रहें और हे प्रभु ! आपका गोपालकों पर सदा आशीर्वाद बना रहे।

ओ३म् आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद्वृधेऽअसन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे॥२४॥

यजु० २५–१४

शब्दार्थ *–* ***भद्रा:*** *– उत्तम, श्रेष्ठ,* ***अदब्धास:*** *– जिन पर कोई आक्षेप नहीं किया जा सकता,* ***अपरीतास:*** *– जिनका कोई विपरीत परिणाम नहीं हो सकता,* ***उद्भिद:–उद्+भिदिर्=उद्भेदक*** *– जो मानों भीतर से*

संसार में केवल परमेश्वर का ही चमत्कार है।

[सम्राडेको विराजति" अथर्व०]

प्रतिभा के रूप में फुटकर निकले हों, ***क्रतवः*** *– ऐसे कर्म या प्रज्ञा,* ***नः आ यन्तु*** *– हमें प्राप्त हों,* ***यथा*** *– जैसे,* ***देवाः*** *– विद्वान लोग,* ***सदम्*** *– सदैव,* ***नः*** *– हमारी,* ***वृधे इत्*** *– वृद्धि अर्थात् उन्नति के लिये ही,* ***असन्*** *– सहायक होते हैं वैसे वे,* ***दिवेदिवे*** *– प्रतिदिन,* ***रक्षितारः*** *– हमारी रक्षा करने वाले तथा,* ***अप्रायुवः*** *– अप्रमादी एवं सावधान होकर हमारी सहायता करें।*

भावार्थ – हम में से श्रेष्ठ कर्म ऐसे फूटें जैसे मस्तिष्क से कोई प्रतिभा का विचार फूट पड़ता है। हमारे कर्म ऐसे हों जिनपर कोई आक्षेप न हो सके, देव लोग सदा शुभ कार्यों में हमारी सहायता करते रहे हैं।

ओ३म् देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाᳬरातिरभि नो निवर्त्तताम्। देवानाᳬसख्यमुपसेदिमा वयं देवा नऽआयुःप्रतिरन्तु जीवसे॥२५॥

यजु० २५–१५

शब्दार्थ – ***ऋजूयताम्*** *– ऋजु, सरल स्वभाव वाले,* ***देवानाम्*** *– विद्वान् लोगों की,* ***सुमतिः*** *– उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो, और,* ***देवानाम्*** *– विद्वान् लोगों की,* ***रातिः*** *– उदारता,* ***नः अभि*** *– हमारी तरफ,* ***निवर्ततताम्*** *– चली आये,* ***देवानाम् सख्यम्*** *– विद्वान् लोगों की मित्रता,* ***वयम्*** *– हम,* ***उपसेदिम*** *– प्राप्त करें,* ***देवाः*** *– विद्वान् लोग,* ***नः*** *– हमारी,* ***आयुः*** *– आयु को,* ***जीवसे*** *– स्वस्थ जीवन के लिये,* ***प्रतिरन्तु*** *– बढ़ावें।*

भावार्थ – सरलता से व्यवहार करने वाले विद्वानों की कल्याणकारी शुभ मति हमें प्राप्त हो, विद्वानों की उदारता मित्रता हमें प्राप्त हो, और आयुर्विज्ञान के वेत्ता विद्वान् लोग रसायन आदि के सेवन से हमारी आयु को स्वस्थ दीर्घ बनायें।

ओ३म् तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥२६॥

यजु० २५–१८

अदिति [प्रकृति] और बिराट् गाय की हिंसा न करो।
[अथर्व० ४-३९ सू०+ सामवेद ३८,१०२,१४२०]

शब्दार्थ – ***जगतः*** – *'जंगम'–जैसे मनुष्य, गौ आदि,* ***तस्थुषः*** – *'स्थावर'–जैसे घर, भूमि आदि,* ***पतिम्*** – *इन सबके स्वामी,* ***धियं जिन्वम्***– *कर्मों तथा बुद्धियों को जीवन प्रदान करने वाले,* ***तं ईशानम्*** – *उस सकल ऐश्वर्यों के स्वामी को,* ***वयम्*** – *हम,* ***अवसे*** – *रक्षा के लिये,* ***हूमहे*** – *पुकारते हैं, उससे याचना करते हैं,* ***यथा*** – *जिससे कि,* ***पूषा*** – *पोषक परमात्मा,* ***नः*** – *हमारे,* ***वेदसाम्*** – *ज्ञानों और धनों की,* ***वृधे*** – *वृद्धि के लिये,* ***असत्*** – *होवे। साथ ही वह,* ***स्वस्तये*** – *हमारे कल्याण के लिये,* ***रक्षिता*** – *हमारा रक्षक,* ***पायुः*** – *पालक तथा,* ***अदब्धः*** – *अविनाशक होवे।*

भावार्थ – चराचर तथा स्थावर जगत् के पालक, कर्म तथा प्रज्ञा के प्रेरक उस ऐश्वर्यों के स्वामी प्रभु को हम रक्षा के लिये पुकारते हैं जो हमारे ज्ञान की वृद्धि के साथ–साथ हमारे कल्याण के लिये हमारी रक्षा तथा पालना करे।

ओ३म् स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥२७॥

यजु० २५–१९

शब्दार्थ – ***वृद्धश्रवाः*** – *बढ़ा हुआ* ***इन्द्रः*** *–परमेश्वर,* ***नः*** – *हमारे लिये,* ***स्वस्ति दधातु*** – *कल्याण धारण करे,* ***विश्ववेदाः*** – *महान् ज्ञान वाला,* ***पूषा*** – *सबका पोषण करने वाला परमेश्वर,* ***नः स्वस्ति दधातु*** – *हमारे लिये कल्याण धारण करे, जिसकी* ***अरिष्टनेमिः*** – *'नेमि' नहीं टूट सकती ऐसा,* ***तार्क्ष्यः*** – *भव–सागर से पार लगाने वाला,* ***नः स्वस्तिः दधातु*** – *हमारे लिये कल्याण धारण करे,* ***बृहस्पतिः नः स्वस्ति दधातु*** – *बड़े से बड़ों का रक्षक परमेश्वर हमारे लिये कल्याण धारण करे।*

भावार्थ – इस मन्त्र के मानव–समाज–परक तथा आधिदैविक दो अर्थ हो सकते हैं जो भाव की दृष्टि से इस प्रकार है :

परमेश्वर कहता है प्राणियो! मैं ही गायों में अमृतभरता हूँ। पुष्टिकारक दूध और घृत सींचता हूँ। [अथर्व० २-२६-४]

(क) सामाजिक अर्थ– '**वृद्धश्रवाः इन्द्रः**' का अर्थ हुआ बलशाली '**क्षत्रिय**' '**पूषा**' का अर्थ हुआ प्रजा का धन–धान्य से पोषण करने वाला '**वैश्य**', भव–सागर की नौका को खेने वाले 'तार्क्ष्य' का अर्थ हुआ '**शूद्र**', '**बृहस्पति**' का अर्थ हुआ '**ब्राह्मण**' सामाजिक अर्थ यह हुआ कि समाज के चारों वर्ण हमारा कल्याण करें।

(ख) आधिदैविक अर्थ– '**वृद्धश्रवाः**' का अर्थ हुआ गड़गड़ाहट करने वाली '**विद्युत**', '**पोषा**' का अर्थ हुआ सृष्टि का पोषण करने वाला '**सूर्य**', '**तार्क्ष्य**' का अर्थ हुआ समुद्र में वर्तमान '**बड़वानल**', '**बृहस्पति**' का अर्थ हुआ ब्रह्माण्ड का '**पालक**' आधिदैविक अर्थ हुआ कि संसार की ये सब आधिदैविक–शक्तियां हमारा कल्याण करें।

ओ३म् भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥२८॥

यजु० अ० २५, २१

शब्दार्थ –***देवाः*** – *हे दिव्य–गुण–युक्त प्रभु की शक्तियों !,* ***कर्णेभिः*** – *कानों से हम,* ***भद्रम्*** – *कल्याण को,* ***श्रृणुयाम*** – *सुनें,* ***यजत्राः*** – *हे सृष्टि–यज्ञ की विधातृ शक्तियों,* ***अक्षभिः*** – *आंखों से,* ***भद्रम्*** – *कल्याण को,* ***पश्येम्*** – *हम देखें,* ***तनूभिः*** *– शरीरों से,* ***स्थिरैः अंगैः*** – *सुदृढ़ अंगों से,* ***तुष्टुवांसः*** – *स्तुति करते हुए,* ***देवहितम्*** – *प्रभु या कर्मों के द्वारा नियत,* ***यत् आयुः*** – *जो आयु है उसे,* ***व्यशेमहि*** – *प्राप्त हों।*

भावार्थ – हे दिव्य गुण–युक्त प्रभो ! हम आपकी कृपा से कानों से उत्तम शब्द ही सुनें, आंखों से अच्छा ही देखें, स्थिर सुदृढ़ अंगों और शरीरों से आपकी ही स्तुति करते हुए आपके द्वारा हमारे कर्मानुसार नियत आयु को पूर्ण रूप से प्राप्त हों, अकाल मृत्यु के ग्रास न बनें।

रंभाती हुई गायें राष्ट्र में दूध की धारायें बहाती हैं। **[अथर्व २-५-६]**

२ ३ १ २ ३१२ ३ २ ३ २
ओ३म् अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
१२ २र ३१२
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥२६॥ साम. १–१–१

शब्दार्थ –*अग्ने* – *हे प्रकाश–स्वरूप प्रभो !,* ***वीतये*=** *दुःखों को विगत करने के लिये,* ***हव्यदातये*** – *तथा भोग्य पदार्थों को देने के लिये,* ***गृणानः*** – *हमसे स्तुति किया हुआ या हमसे स्तुति को प्राप्त होकर,* ***आयाहि*** -- *सब दिशाओं से हमें आप प्राप्त हों,* ***निः*** – *निश्चय से,* ***होता*** – *मनःकामनाओं को देने वाले, पूर्ण करने वाले आप,* ***बर्हिषि*** – *'बर्ह' अर्थात् यज्ञ–स्वरूप हमारे हृदय में,* ***सत्सि*** – *विराजमान हों।*

भावार्थ – हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! हमारे द्वारा स्तुति किये हुए आप हमें दुःखों से बचाने के लिये तथा जीवन–यज्ञ के हव्य–रूप भोग्य–पदार्थों को देने के लिये सब ओर से प्राप्त हूजिये, और प्राप्त होकर हमारे हृदय–मन्दिर में निश्चय से विराजमान हो जाइये।

१ २ ३२३ २ ३ १ २ ३२
ओ३म् त्वमग्ने यज्ञानाँहोता विश्वेषाँहितः।
३ २ ३ १२३ १२
देवेभिर्मानुषे जने ॥३०॥ साम० १–२

शब्दार्थ –*अग्ने* – *हे प्रकाशस्वरूप प्रभो !,* ***त्वम्*** – *तू,* ***यज्ञानाम्*** – *श्रेष्ठ कर्मों का,* ***होता*** – *प्रेरक है,* ***विश्वेषाम्*** – *सबका,* ***हितः*** – *हितकारी है,* ***देवेभिः*** – *अपने दिव्य गुणों से,* ***मानुषे जने*** – *मनुष्य के बीच, उसके मन में, आ विराज।*

भावार्थ – हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! आप ही श्रेष्ठ कर्मों के प्रेरक हो, आप ही समस्त जगत् के धारण करने वाले तथा हित करने वाले हो ! प्रभो ! आप अपने दिव्य गुणों के द्वारा स्थित होकर हमें प्रेरणा करो कि हम सुपथ के राही रहें, कुपथ का अनुगमन न करें।

जैसे शरीर से प्राणोच्छवास निकलकर फिर उसी में प्रविष्ट होता है। वैसे ही ईश्वर से वेदों का प्रादुर्भाव तिरोभाव होता है [अथर्व० १०-४-२०+यजु० ३१-७]

ओ३म् ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥३१॥ अथर्व० १–१–१

शब्दार्थ –ये – *जो विश्व के पदार्थ,* **त्रिषप्ताः** – *३ × ७ = २१,* **विश्वा रूपाणि** *–सब रूपों को,* **बिभ्रतः** – *धारण करते हुए,* **परियन्ति** – *सब ओर से भ्रमण कर रहे हैं,* **वाचस्पतिः** – *वाणी का स्वामी,* **तेषां तन्वः बला** – *उन नाना रूपों के बलों को,* **अद्य** – *आज,* **मे** – *मुझे, मेरे भीतर,* **दधातु** – *धारण कराये।*

भावार्थ – इस मन्त्र के अनेक अर्थ किये जाते हैं जिनमें से कुछ निम्न है :

(क) 'त्रि–सप्ताः' का एक अर्थ है– 'सप्ताः' अर्थात् संसार को तारने वाले 'त्रि'' अर्थात् तीन पदार्थ। वे तीन पदार्थ क्या हैं ? काल के सम्बन्ध में भूत, वर्तमान, भविष्यत्– ये तीन काल हैं जो संसार में भ्रमण कर रहे हैं, वे मेरे भीतर भी संचरण कर मुझे तीनों कालों में संभाले रहें। लोकों के सम्बन्ध में स्वर्ग, मध्य, भू–लोक हैं– इन तीनों लोकों में मेरे तनु का कल्याण रहे। गुणों के सम्बन्ध में तीन गुण हैं–सत्व, रज, तम–ये तीनों गुण मुझे संसार–सागर में तारें। सत्ताओं के सम्बन्ध में तीन अनादि सत्ताएँ हैं– ईश्वर, जीव, प्रकृति–इन तीनों के सहारे मैं मुक्ति को प्राप्त करूं।

(ख) 'त्रि–सप्ताः' का एक दूसरा अर्थ है– ३ × ७= २१ इस दृष्टि से १० दिशाएँ, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय तथा १ मन मिलाकर इस प्रकार इन दस दिशाओं तथा इन इन्द्रियों से भक्त अपने कल्याण की प्रार्थना करता है।

(ग) 'त्रि–सप्ताः' का एक तीसरा अर्थ है – ३× ७= २१ हमने ऊपर इस २१ अर्थ को ही लिया है। इक्कीस के अर्थ के सम्बन्ध में दो अर्थ विशेष रूप से किये जाते हैं–वाणीपरक तथा सृष्टिपरक।

स्विष्टकृत् आहुति यज्ञान्त में गौघृत या भात से देनी चाहिये।
[शतपथ, संस्कारविधि]

वाणीपरक अर्थ– एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन– ये ३ वचन होते हैं और ७ विभक्तियां होती हैं। वाणी इन २१ में विविध रूपों को धारण करती हुई विचरती है। वाणी का स्वामी परमात्मा हमें वाणी के इन त्रिगुणित सात = २१ वचनों के अर्थ प्रकाशन–सामर्थ्य को मेरे भीतर धारण करावे, अर्थात् मैं इनके अर्थ प्रकाशन–सामर्थ्य का जानकार होकर वाग्व्यवहार में कुशल होऊं।

इति स्वस्तिवाचनम्

अथ शान्तिकरणम्

सत्संग–जन्मदिन–नामकरण–गृहप्रवेश आदि अवसरों पर स्वस्तिवाचन मंत्रों का पाठ करके "शान्ति करण" मंत्रों का पाठ करना चाहिये।

ओ३म् शं न इन्द्रग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ॥१॥

ऋ० ७–३५–१

शब्दार्थ –*इन्द्राग्नी* *– विद्युत् और अग्नि,* ***अवोभिः*** *– रक्षा कर्मों के द्वारा,* ***नः*** *– हमारे लिये,* ***शम्*** *– सुखकारी,* ***भवताम्*** *– हों,* ***रातहव्यौ*** *– भोग्य पदार्थों को देने वाले,* ***इन्द्रावरुणौ*** *– बिजली और जल,* ***नः शम्*** *– हमारे लिये सुखकारी हों,* ***इन्द्रासोमौ*** *– सूर्य और चन्द्र,* ***सुविताय*** *– भोग्य पदार्थों की उत्पत्ति के लिये,* ***शम्*** *– हमारे लिये सुखकारी हों,* ***इन्द्रापूषणौ*** *– विद्युत् और पुष्टि करने वाला मेघ,* ***वाजसातौ*** *– धन और ऐश्वर्य की प्राप्ति जिस कर्म में हो उस कृष्यादि कर्म में तथा,* ***शंयोः***= *रोगों से शमन एवं भयों को दूर करने में,* ***नः*** *– हमारे लिये,* ***शम्*** *– सुखकारी हों।*

आस्तिक दानी होता है- वह कंजूसी नहीं करता।
[ऋक् १०-४२-९, देवकामो धनं न रूणद्धि]

भावार्थ – हे प्रभो ! आपकी कृपा से विद्युत् और अग्नि अपने रक्षा रूप कर्मों के द्वारा हमारे लिये सुखकारी हों, भोग्य–पदार्थों को देने वाले बिजली और जल हमारे लिये सुखकारी हों, भोग्य–पदार्थों को उत्पन्न करने वाले सूर्य और चन्द्र हमारे लिये सुखकारी हों, धन और ऐश्वर्य देने वाले विद्युत् और मेघ हमारे लिये सुखकारी हों। हे भगवान ! आप हमारे रोगों का शमन कर और भयों को दूर कर हमारे लिये सुखकारी हों।

ओ३म् शं नो भगः शमु नः शं सो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः। शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु॥२॥

ऋ० ७–३५–२

शब्दार्थ –***भगः*** – *सेवन करने योग्य सूर्य,* ***नः शम्*** – *हमारे लिये सुखकारी हो,* ***उ*** – *निश्चय से,* ***शंसः*** – *प्रशंसा,* ***नः शम्*** – *हमारे लिये सुखकारी,* ***अस्तु*** – *हो,* ***पुरन्धिः*** – *बस्तियों में पायी जाने वाली बुद्धि,* ***नः शम्*** – *हमारे लिये सुखकारी हो,* ***उ*** – *और,* ***रायः*** – *अनेक विध ऐश्वर्य,* ***शम् सन्तु*** – *हमारे लिये सुखकारी हो,* ***सुयमस्य सत्यस्य शंसः*** – *नियमानुकूल सच्ची प्रशंसा,* ***नः शम्*** – *हमारे लिये सुखकारी हो,* ***पुरुजातः*** – *अनेक स्थानों में प्रसिद्ध, सर्व–विख्यात,* ***अर्यमा*** – *न्यायाधीश,* ***नः शं अस्तु*** – *हमारे लिये सुखकारी हो।*

भावार्थ – प्रातःकाल सूर्य की रश्मियों का सेवन आरोग्यकारी होता है, ग्रामों में जन–साधारण के पास सहज–बुद्धि होती है–ये हमारे लिये सुखद हों। धन–ऐश्वर्य से मनुष्य कुपथगामी हो जाता है, परन्तु यहां प्रार्थना है कि धन–ऐश्वर्य कुमार्ग में न ले जाकर हमें सुख दें। प्रशंसा हमें न्याय–मार्ग से विचलित न करे। न्याय की कसौटी पर कभी–कभी हम ठीक नहीं उतरते, इसलिये कहा कि न्याय की दृष्टि से हम ठीक उतरें ताकि देश का न्याय–विधान हमारे लिये दण्ड देने के स्थान में सुख देने वाला हो।

दक्षिणा यज्ञ की भेषज्ञ क्रिया [ओषधि] है।

[दक्षिणा भेषज्ञं वै यज्ञस्य"-शत० १२-७-१-१४]

ओ३म् शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वद्याभिः।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु॥३॥

ऋ० ७-३५-३

शब्दार्थ –***धाता नः शम्*** – *सब को उत्पन्न करने वाला परमेश्वर हमारे लिये सुखकारी हो,* ***धर्ता उ नः शम् अस्तु*** – *सबको धारण करने वाला हमारे लिये सुखकारी हो,* ***उरूची नः शम् भवतु*** – *चारों दिशाओं में जो फैला हुआ है वह हमारे लिये सुखकारी हो,* ***बृहती रोदसी स्वधाभिः शम्*** – *महान् द्यु और पृथ्वी सब हमारे लिये सुखकारी हों,* ***अद्रिः नः शम्*** – *पर्वत हमारे लिये सुखकारी हों,* ***देवानाम् सुहवानि नः शम् सन्तु*** – *विद्वानों के सुन्दर उपदेश हमारे लिये सुखकारी हों।*

भावार्थ – हे प्रभो ! जिस शक्ति ने विश्व को उत्पन्न किया, द्यु–लोक और पृथिवीलोक में जो सूर्य–चन्द्र–नक्षत्र–अग्नि–वायु नाना पदार्थ समाये हुए हैं, सब वन–पर्वत तुम्हारी महिमा गा रहे हैं, विद्वानों के सुन्दर–सुन्दर उपदेश–ये सब हमारे लिये सुखकारी हों।

ओ३म् शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम्।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभिवातु वातः॥४॥

ऋ० ७-३५-४

शब्दार्थ –***ज्योतिरनीकः*** – *प्रकाश ही जिसका बल है ऐसा,* ***अग्निः नः शम् अस्तु*** – *अग्नि हमारे लिये सुखकारी हो,* ***मित्रावरुणौ नः शम्*** – *प्राण और अपान हमारे लिये सुखकारी हों,* ***अश्विनौ शम्*** – *सूर्य और चन्द्र–सुखकारी हों,* ***सृकृताम्*** – *उत्तम कर्म करने वालों के,* ***सुकृतानि*** – *उत्तम कर्म,* ***नः शम् सन्तु*** – *हमारे लिये सुखकारी हों,* ***इषिरः*** – *गतिशील,* ***वातः*** – *वायु,* ***नः शम् अभिवातु*** – *हमारे लिये सुख को चारों तरफ से बहा लाये।*

भावार्थ – हे प्रभो ! आपकी कृपा से प्रकाश ही जिसका बल है ऐसा पार्थिव अग्नि, प्राण–अपान, सूर्य–चन्द्र, उत्तम कर्म करने वालों के उत्तम आचरण हमारे लिये सुखकारी हों और

स्वर्ण-गौ-भूमि- अश्व ये चार दक्षिणा के द्रव्य है।

[शत० ४-३-४-८]

गतिशील वायु हमारे लिये चारों तरफ से सुख कर हो।

ओ३म् शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः॥५॥

ऋ० ७–३५–५

शब्दार्थ –नः पूर्वहूतौ – *प्रातःकाल उठकर हमारे प्रथम आह्वान, पुकार में,* **द्यावापृथिवी** – *द्युलोक और पृथिवी लोक,* **शम्** – *सुखकारी हों,* **नः दृशये अन्तरिक्षम् शम् अस्तु** – *प्रातःकाल उठकर जब हम अन्तरिक्ष की तरफ आंखें उठाकर देखें तो जो कुछ देखें वह सुखकारी हो,* **वनिनः ओषधीः नः शम् भवन्तु** – *वनों में लहलहाती औषधियां हमारे लिये सुखकारी हों,* **रजसस्पतिः** – *लोक–लोकान्तर की रज–रज का पति,* **जिष्णुः** – *जयशील–जिसकी जय का डंका सब जगह बज रहा है वह,* **नः शम् अस्तु** – *हमारे लिये सुखकारी हो।*

भावार्थ – हे प्रभो ! प्रातःकाल आंख सुलते ही द्युलोक और पृथिवीलोक हमारे लिये सुखकारी हों, अन्तरिक्ष की तरफ देखें तो वहाँ हमें अन्तरिक्ष में सुख–ही–सुख दीखें, औषधियां हमारे लिये सुखकारी हों, हे विश्व के रज–रज में, कण–कण में व्यापक विश्व के पति, विश्व के विजेता प्रभु ! आपकी कृपा से हमारे चारों तरफ सुख की वर्षा होती रहे।

ओ३म् शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु॥६॥

ऋ० ७–३५–६

शब्दार्थ –देवः – *प्रकाशमय,* **इन्द्रः** – *सूर्य,* **वसुभिः–(वस् निवासे)** – *निवास जीवन की कारणभूत अपनी जीवनदायिनी रश्मियों के साथ,* **नः शम्** – *हमारे लिये सुखकारी हो,* **सुशंसः** – *उत्तम स्तुति के योग्य,* **वरुणः** – *संवत्सर,* **आदित्येभिः** – *बारहों मासों में विभक्त आदित्य के साथ,* **नः शम् अस्तु** – *हमारे*

लिये सुखकारी हो, ***जलाष:*** *– अभिलाषा पूर्ण करने वाला,* ***इन्द्रः*** *– जीव,* ***रुद्रेभिः*** *– प्राणों के साथ,* ***नः शम्*** *– हमारे लिये सुखकारी हो,* ***त्वष्टा*** *– हे विश्वव्यापी ईश्वर,* ***ग्नाभिः*** *– हमारी* ***इह*** *–* ***नः*** *– प्रार्थना को,* ***शृणोतु*** *– सुनो।*

भावार्थ – हे प्रभो ! सूर्य की जीवनदायिनी किरणें हमारे लिये सुखकारी हों, बारहों मासों से युक्त स्तुतियोग्य संवत्सर, अभिलाषा पूर्ण करने वाला जीवात्मा प्राणों के साथ सुखकारी हो। संसार के रचनेहारे हमारी करबद्ध प्रार्थना को सुनो।

ओ३म् शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः। शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्व शम्वस्तु वेदिः॥७॥
ऋ० ७–३५–७

शब्दार्थ – ***सोमः नः शमु भवतु*** *– यज्ञ में प्रयुक्त होने वाला सोम–रस हमारे लिये सुखकारी हो,* ***ब्रह्म नः शम्*** *– यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले वेद–मन्त्र हमारे लिये सुखकारी हों,* ***ग्रावाणः नः शम् सन्तु*** *– सोम–रस निकालने के लिये प्रयुक्त होने वाले पत्थर हमारे लिये सुखकारी हों,* ***यज्ञाः उ शम् सन्तु*** *– यज्ञ हमारे लिये सुखकारी हों,* ***स्वरूणाम्*** *– यज्ञीय–स्तम्भों के,* ***मितयः*** *– नाप,* ***नः शम् भवन्तु*** *– हमारे लिये सुखकारी हों,* ***प्रस्वः*** *– औषधियां,* ***नः शम्*** *– हमारे लिये सुखकारी हों,* ***उ वेदिः नः शम् अस्तु*** *– और यज्ञीय–वेदी हमारे लिये सुखकारी हो।*

भावार्थ – *हे प्रभो ! आपकी कृपा से औषधियों के राजा सोम का रस, वेद के मन्त्र, सोम रस निकालने के प्रस्तर, यह यज्ञ, यज्ञ में खड़े किये गये यज्ञीय–स्तम्भ, औषधियां, यज्ञ की वेदी–ये सब हमारे लिये सुखकारी हों।*

भूमि की दक्षिणा देने वाले द्युलोक में ऊँचा स्थान पाते हैं, अश्वों की दक्षिणा देने वाले सूर्य के समान तेजस्वी, सोना-चाँदी की दक्षिणा देने वाले दीर्घायु और गाय को दक्षिण में देने वाले पूर्ण जीवी बुद्धिमान् होते हैं।
[शत० ४-३-४-७]

ओ३म् शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्त्रः प्रदिशो भवन्तु।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः॥८॥

ऋ० ७–३५–८

शब्दार्थ – **उरुचक्षाः** – *संसार की महान् चक्षु,* **सूर्यः** – *सूर्य है,* **नः शम् उदेतु** – *हमारे लिये उसका उदय सुखकारी हो,* **चतस्त्रः प्रदिशः न शम् भवन्तु** – *चारों दिशाएं हमारे लिये सुखकारी हों,* **ध्रुवयः पर्वताः नः शम् भवन्तु** – *स्थिरता के कारणभूत पर्वत हमारे लिये सुखकारी हों,* **सिन्धवः उ आपः नः शम् सन्तु** – *नदियां तथा जल हमारे लिये सुखकारी हों।*

भावार्थ – हे प्रभो ! आपकी कृपा से संसार की महान् चक्षु – सूर्य, चारों दिशाएं, स्थिरता के मानों मूर्तरूप पर्वत, समुद्र के समान उमड़ती नदियाँ और जल हमें सुख देने वाले हों।

ओ३म् शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः।
शं नो विष्णः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः॥६॥

ऋ० ७–३५–६

शब्दार्थ –**व्रतेभिः** – *अपने निश्चित किये हुए व्रतों– अन्न आदि भोग्य पदार्थों को उत्पन्न करने के द्वारा,* **अदितिः** – *पृथिवी,* **नः शम् भवतु** – *हमारे लिये सुखकारी हो,* **स्वर्काः** – *स्तुति योग्य,* **मरुतः** – *प्राण,* **नः शं भवन्तु** – *हमारे लिये सुखकारी हों,* **विष्णुः** – *सूर्य,* **उ** – *और,* **पूषा** – *मेघ,* **नः शम् अस्तु** – *हमारे लिये सुखकारी हो,* **नः भवित्रम् शम् अस्तु** – *हमारा भविष्य सुखकारी हो,* **उ वायुः शम् अस्तु** – *और वायु भी हमारे लिये सुखकारी हो।*

भावार्थ – हे प्रभो ! आपकी कृपा से पृथिवी अन्नादि भोग्य पदार्थों को उत्पन्न करने वाली, स्तुति–योग्य प्राण–शक्ति, सूर्य, मेघ तथा वायु हमारे लिये सुखकारी हों, हमारा भविष्य भी हमारे लिये सुखकारी हो।

दक्षिणा यजमान का कवच होता है। [ऋक् १०-७-७]

ओ३म् शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः॥१०॥

ऋ० ७–३५–१०

शब्दार्थ –***त्रायमाणः*** – *अन्धकार तथा कृषि आदि से रक्षा करने वाला,* ***सविता देवः*** – *उदय होता हुआ दिव्य शक्ति वाला सूर्य,* ***नः शम्*** – *हमारे लिये सुखकारी हो,* ***विभातीः उषसः*** – *प्रचुर प्रकाशवाली प्रभात वेलाएं,* ***नः शं भवन्तु*** – *हमारे लिये सुखकारी हो,* ***प्रजाभ्यः*** – *प्रजाओं के लिये,* ***पर्जन्यः*** – *बरसने वाला मेघ,* ***शम् भवतु*** – *सुखकारी हो–वह सूखे या जल विप्लव का कारण न हो।* ***क्षेत्रस्य पतिः*** – *खेतों का मालिक किसान जिस पर हमारी आजीविका निर्भर है वह भी,* ***शंभुः नः शम् अस्तु*** – *हमारे लिये सुखकारी हो।*

भावार्थ – हे प्रभो ! आपकी कृपा से अन्धकार तथा कृमियों से रक्षा करने वाला, दिव्य शक्ति वाला, सूर्य, प्रचुर प्रकाशवाली प्रभात वेलाएं, बरसने वाला मेघ और लहलहाते खेतों का मालिक किसान – ये सब प्रजाओं के लिये सुखकारी हों।

ओ३म् शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः॥११॥

ऋ० ७–३५–११

शब्दार्थ –***देवाः*** – *दिव्य गुण–कर्म स्वभाव वाले,* ***विश्वदेवाः*** – *सब विद्वज्जन,* ***नः शम् भवन्तु*** – *हमारे लिये सुखकारी हों,* ***सरस्वती=सरस्वती वाङ् नाम, निघन्टु,*** – *वाणी,* ***धीभिः*** – *बुद्धि के साथ,* ***शम् अस्तु*** – *सुखकारी हो,* ***अभिषाचः*** – *सब सम्बन्ध रखने वाले मिलनसार लोग,* ***उ*** – *और,* ***रातिषाचः*** – *देने–लेने, आदान–प्रदान के कारण सम्बन्ध रखने वाले लोग,* ***नः शम्*** – *हमारे लिये सुखकारी हों,* ***दिव्याः*** – *द्यु लोक के,* ***पार्थिवाः*** – *पृथिवी लोक के,* ***अप्याः*** – *जल–पदार्थ,* ***नः शम्*** – *हमारे लिये सुखकारी हों।*

यज्ञ को कुटिल न होने दो। यज्ञ को भ्रष्ट न करो।–यज्ञ ब्रह्माण्ड की आत्मा है।
[मा ह्वाः–यजु० १–२]

भावार्थ – हे प्रभो ! आपकी कृपा से दिव्य गुण–कर्म–स्वभाव वाला समस्त विद्वत्समाज, बुद्धि पूर्वक वाणी का प्रयोग करने वाले, आदान–प्रदान से मिलनसार लोग सब सुखकारी हों। द्यु–लोक में विचरण करने वाले हवाई जहाज, मेघ, उड़नशील पक्षी, पृथिवी पर विचरण करने वाले मनुष्य–जीव–जन्तु–रथ–मोटर–रेल आदि जल में विचरण करने वाले मत्स्य–मगर–नाव–जहाज–मोती–मूंगा ये सब हमारे लिये सुखकारी हों।

ओ३म् शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः। शं नः ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु॥१२॥

ऋ० ७–३५–१२

शब्दार्थ – ***सत्यस्य*** – *सत्य की,* ***पतयः*** – *रक्षा करने वाले,* ***नः शम् भवन्तु*** – *हम सब में शान्ति स्थापित करें,* ***अर्वन्तः*** – *शीघ्रगामी, किसी बात को झट समझ जाने वाले विचारशील लोग,* ***नः शम् सन्तु*** – *हमारे लिये शान्ति का सन्देश लाने वाले हों,* ***गावः गायें***– *और ज्ञानी लोग,* ***नः शम् सन्तु*** – *हमारे लिये शान्ति देने वाले हों,* ***ऋभवः*** – *शिल्पी लोग,* ***सुकृतः*** – ***सुहस्ताः*** – *उत्तम हाथ वाले कारीगर* ***नः शम्*** – *हमारे लिये सुखकारी हों* ***हवेषु*** – *विद्वान् अतिथि,* ***पितरः*** – *बड़े–बूढ़े लोग,* ***नः शम् भवन्तु*** – *ऐसी सलाह दें जिससे घर में शान्ति विराजे।*

भावार्थ – हे प्रभो ! आपकी कृपा से ऐसे व्यक्ति हों जो सत्य की रक्षा कर समाज में शान्ति स्थापित करें, हमारी समस्याओं को तुरंत समझकर ज्ञानपूर्वक उनका समाधान निकालें चतुर शिल्पी और कारीगर हों जो नानाविध उपकरणों का निर्माण कर सकें। अतिथि हमारी बात सुनकर ऐसी मति दें जिससे हमारा कल्याण हो।

ओ३म् शं नो अज एकपादेवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः। शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा॥१३॥

ऋ० मं० ७, सू० ३५, मं० १३

कृषि करना उत्तम यज्ञ–कर्म हैं-इससे किसान (अन्नदाता)और राष्ट्र की रक्षा करो। **[ऋक् १०-३४-१३, ऋक् १०-१२४-४, अथर्व० २-८-४]**

शब्दार्थ –**देवः** – *दिव्य गुणों वाला,* **अजः** – *अजन्मा,* **एकपाद्** – *एक ही प्रकार की गतिवाला, एक डग वाला, एक रस परमेश्वर या सूर्य,* **तं सूर्यं अजमेकपादम्** – **नः शम्** – *हमारे लिये सुखकारी,* **अस्तु** – *हो,* **अहिर्बुध्न्यः–अहिः=अहिंसक, बुध्न्य=सबके बोध–योग्य** – *परमेश्वर या मेघ,* **नः शम्** – *हमारे लिये सुखकारी हों,* **समुद्रः शम्** – *समुद्र हमारे लिये सुखकारी हो,* **अपाम्** – *आकाशस्थ जलों को,* **नपात्** – *न गिरने देने वाला, आकाश में हर समय जल रहता है परन्तु वर्षा–काल को छोड़कर गिरता नहीं,* **पेरुः** – *पालन करने वाला या दुखों से पार लगाने वाला परमात्मा,* **नः** – *हमें,* **शम्** – *शान्तिदायक,* **अस्तु** – *हो,* **पृश्निः** – *व्यापक होने के कारण* **देवगोपाः** – *दिव्य गुणों का रक्षक परमात्मा,* **नः शम् भवतु** – *हमें शान्तिदायक हो।*

भावार्थ – हे प्रभो ! आप अजन्मा, एकरस, अहिंसक, सबके बोध–योग्य हो, आप हमें शान्ति प्रदान करो, आपकी कृपा से सूर्य तथा मेघ हमें शान्ति प्रदान करें। समुद्र तथा आकाश में ठहरे हुए जल, हमारे लिये सुखकारी हों। प्रभु ! आप व्यापक हो, कोई वस्तु आपसे अछूती नहीं है, हमें शान्ति तथा सुख प्रदान करो।

ओ३म् इन्द्रो विश्वस्य राजति।
शं नोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥१४॥ यजु० ३६–८

शब्दार्थ –**इन्द्रः** – *प्रदीप्त सूर्य,* **विश्वस्य** – *जो विश्व का,* **राजति** – *प्रकाश करता है,* **शं नः अस्तु** – *वह हमारे लिये सुखकारी हो, और वह,* **द्विपदे** – *दो पैर वालों के लिये तथा,* **चतुष्पदे** – *चार पैर वालों के लिये सुखकारी हो।*

भावार्थ – हे प्रभो ! जो प्रदीप्त सूर्य संसार को प्रकाश दे रहा है वह दोपायों तथा चौपायों के लिये सुख का देने वाला हो।

बुद्धिमान् (मेधावी) राज-पुरूष और राजा हल जोतते हैं।- यह भी राजा का राष्ट्रयज्ञ है। [ऋक् १०-१०१-४]

ओ३म् शं नो वातः पवता७ शन्नस्तपतु सूर्यः ।
शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽअभि वर्षतु॥१५॥ यजु० ३६–१०

शब्दार्थ –***वातः*** – *वायु,* ***नः*** – *हमारे लिये,* ***शम्*** – *सुखकारी,* ***पवताम्*** – *बहे,* ***सूर्यः*** – *सूर्य,* ***नः*** – *हमारे लिये,* ***शम्*** – *सुखकारी,* ***तपतु*** – *तपे,* ***कनिक्रदत्*** – *गड़गड़ाता हुआ,* ***देवः*** – *दिव्य,* ***पर्जन्यः*** – *बरसने वाला मेघ,* ***नः*** – *हमारे लिये,* ***शम्*** – *शान्ति को,* ***अभिवर्षतु*** – *चारों तरफ से बरसे।*

भावार्थ – हे प्रभो ! आपकी कृपा से वायु हमारे लिये सुख को बहा लाये, सूर्य हमारे लिये सुख का ताप दे, गड़गड़ाता हुआ दिव्य मेघ हमारे लिये सुख बरसाये।

ओ३म् अहानि शं भवन्तु नः शं७ रात्रीः प्रति धीयताम्
शन्नऽइन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्नऽइन्द्रावरुणा रातहव्या।
शन्नऽइन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः॥१६॥
यजु० ३६–११

शब्दार्थ –***अहानि*** – *दिन,* ***नः*** – *हमारे लिये,* ***शम् भवन्तु*** – *सुखकारी हों,* ***रात्रीः*** – *रात्रियां,* ***नः*** – *हमारे लिये,* ***शम्*** – *सुख की,* ***प्रतिधीयताम्*** – *धारक हों,* ***इन्द्राग्नी*** – *बिजली और अग्नि,* ***अवोभिः*** – *रक्षा द्वारा,* ***नः*** – *हमारे लिये,* ***शम् भवताम्*** – *सुखकारी हों,* ***रातहव्यौ*** – *'हव्य' अर्थात् ग्राह्य पदार्थों को देने वाले,* ***इन्द्रावरुणौ*** – *प्राण और अपान,* ***नः शम्*** – *हमारे लिये सुखकारी हों,* ***वाजसातौ*** – *अन्नों की प्राप्ति में,* ***इन्द्रापूषणौ*** – *विद्युत और मेघ,* ***नः शम्*** – *हमारे लिये सुखकारी हों,* ***सुविताय=सु+इताय*** – *सन्मार्ग में जाने के लिये* ***इन्द्रासोमा*** – *सूर्य और चन्द्र,* ***शंयोः*** – *हमें सुख प्रदान करें।*

भावार्थ – हे प्रभो ! आपकी असीम कृपा से हमारे दिन सुख से बीतें, रातें भी सुख से बीतें, विद्युत् और अग्नि (इन्द्राग्नी), प्राण और अपान (इन्द्रावरुणौ), विद्युत् और मेघ (इन्द्रापूषणौ) तथा सूर्य और चन्द्र (इन्द्रासोमा) हमारे लिये

मूर्ख पुरूष राष्ट्र-द्रोही होता है। **[ऋक् ७-९४-३]**

शान्तिदायक हों।

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये
शंयोरभि स्रवन्तु नः॥१७॥ यजु० ३६–१२

शब्दार्थ – ***आपः*** – *सब कामनाओं को प्राप्त कराने वाली,* ***देवीः*** – *प्रभु की दिव्य शक्तियां,* ***नः*** – *हम सबके लिये,* ***अभीष्टये*** – *अभीष्ट फल प्राप्ति के लिये,* ***पीतये*** – *प्रभु प्रेम का परम रसपान करने के लिये,* ***शम्*** – *शान्तिदायक,* ***भवन्तु*** – *हों, और,* ***शंयोः*** – *सुख को,* ***अभिस्रवन्तु*** – *सब दिशाओं से बरसायें।*

भावार्थ – हे प्रभु ! जिस प्रकार जल शरीर के मलों को दूर कर शरीर को शान्ति पहुंचाता है, इसी प्रकार हम आपके प्रेम का रसपान करके अपने अन्तःकरण में स्थित मल को दूर कर शारीरिक शान्ति और आत्मिक शान्ति प्राप्त करें।

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष७ँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्ति। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व७ँ शान्तिः शान्तिरेव शान्ति सा मा शान्तिरेधि॥१८॥

यजु० ३६–१७

शब्दार्थ – ***द्यौ शान्तिः*** – *द्यु लोक शान्तिदायक हो,* ***अन्तरिक्षं शान्ति*** *–मध्यवर्ती अकाश–लोक शान्तिदायक हो,* ***पृथिवी शान्तिः*** – *पृथिवी शान्तिदायक हो,* ***आपः शान्ति*** – *जल शान्तिदायक हों,* ***ओषधयः शान्तिः*** – *औषधियां शान्तिदायक हों,* ***वनस्पतयः शान्तिः*** – *वनस्पतियां शान्तिदायक हों,* ***ब्रह्म शान्तिः*** – *यह बृहत् जगत् शान्तिदायक हो,* ***सर्व शान्तिः*** – *संसार का सब कुछ शान्तिदायक हो,* ***शान्तिः एव शान्तिः*** – *हमें सृष्टि के कोने–कोने में शान्ति ही शान्ति मिले,* ***सा मा शान्तिः*** – *वह मेरी शान्ति,* ***एधि*** – *सदा बढ़ती ही जाये।*

भावार्थ – हे प्रभो ! आपकी कृपा से द्युलोक, अन्तरिक्षलोक, पृथिवीलोक, जल, ओषधियां, वनस्पतियां, यह विशाल विश्व, शान्ति का ही स्वर अलापे। मुझे सब जगह से

सृष्टि के आदि में परमात्मा वेदवाणी को चार ऋषियों के मुख से वैसे ही उच्चारित कराता है जैसे पक्षी अण्डे से बच्चे को प्रकट करता है।

[ऋक् १०-६८-७]

Chitra Mudralya-05

शान्ति ही शान्ति प्राप्त हो, जो लगातार बढ़ती ही रहे, बढ़ती ही रहे।

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥१६॥

यजु० अ० ३६, म० २४

शब्दार्थ – ***तत्*** – *वह ब्रह्म,* ***चक्षुः*** – *सबका मार्गदर्शक है,* ***देवहितम्*** – *विद्वानों का परम हितकारक है,* ***पुरस्तात्*** – *वह सबसे प्रथम,* ***उच्चरत्*** – *सबसे ऊपर विद्यमान,* ***शुक्रम्*** – *तेजोमय शक्ति है। हम उसे,* ***शतम्*** – *सौ,* ***शरदः*** – *वर्षों तक,* ***पश्येम*** – *ज्ञान चक्षु से देखें। उसकी कृपा से,* ***शतम्*** – *सौ,* ***शरदः*** – *वर्षों तक,* ***जीवेम*** – *जीवित रहें। उसके गुण,* ***शतम्*** – *सौ,* ***शरदः*** – *वर्षों तक,* ***शृणुयाम*** – *सुनते रहें, तथा उन्हीं गुणों को,* ***शतम्*** – *सौ,* ***शरदः*** – *वर्षों तक,* ***प्रब्रवाम*** – *दूसरों को सुनाते रहें जिससे हम,* ***शतम्*** – *सौ,* ***शरदः*** – *वर्षों तक,* ***अदीनाः*** – *अदीन,* ***स्याम*** – *हों, और,* ***शतात्*** – *सौ से,* ***भूयः*** – *अधिक,* ***शरदः*** – *वर्षों तक,* ***च*** – *भी अदीन होकर रहें,*

इस मंत्र का सूर्य के सम्बन्ध में भी अर्थ किया जाता है–

तत् – *वह,* ***पुरस्तात्*** – *सामने,* ***उच्चरत्*** – *उदय होता हुआ,* ***शुक्रम्*** – *ज्योतिर्मय,* ***देवहितम्*** – *परमेश्वर की ओर से निहित, निश्चित,* ***चक्षुः*** – *संसार का मार्गदर्शक है। हे प्रभु, ऐसी कृपा कीजिये कि उसके मार्ग–दर्शन को हम,* ***शतम् शरदः पश्येम*** – *सौ बरस तक ऐसे ही देखते रहें जैसे अब देख रहे हैं,* ***शतम् शरदः शृणुयाम*** – *सौ बरस तक ऐसे ही उसके उपदेश को सुनते रहें जैसे आज सुन रहे हैं–इत्यादि*

भावार्थ – हे प्रभो ! आप सबके मार्ग–दर्शक हैं, विद्वानों के परम हितकारक हैं, आप तेजोमय शक्ति हैं– हम सौ बरस तक आपको ज्ञान–चक्षु से देखते रहें, सौ बरस तक आपके उपदेश

तप के व्रत और संकल्प से राष्ट्र और धर्म की रक्षा करो।

[तैत्तिरीय ब्रह्मण १-१-२]

को सुनते रहें, सौ बरस तक आपकी कृपा से हम स्वस्थ जीवन बितायें और जन्म जन्मान्तर हम आपका यश देखते–सुनते रहें।

ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥२०॥

यजु० ३४–१

शब्दार्थ – यत् देवम् *– जो दिव्य शक्तिवाला,* ***जाग्रतः*** *– जागते हुए,* ***दूरम्*** *– दूर तक,* ***उदैति*** *– उड़ान भरता है,* ***तत् उ*** *– वही,* ***सुप्तस्य*** *– सोते हुए,* ***तथा एव*** *– वैसे ही,* ***एति*** *– गति करता है,* ***तत्*** *– वह,* ***दूरम् गमम्*** *– दूर तक जाने वाला,* ***ज्योतिषाम्*** *– प्रकाशकों अर्थात् ज्ञान कराने वाली इन्द्रियों का,* ***ज्योतिः*** *– प्रकाशक अर्थात् ज्ञान साधक,* ***एकं*** *– एक ही है,* ***तत् मे मनः*** *– वह मेरा मन,* ***शिव संकल्पम्*** *– शुभ विचारों वाला,* ***अस्तु*** *– हो।*

भावार्थ – हे प्रभो ! दिव्य शक्तिवाला जो मन जागते और सोते हुए विचार करता–करता दूर–दूर तक चला जाता है, जो ज्ञान देने वाली इन्द्रियों को ज्ञान लाकर देता है, जिसके बिना इन्द्रियां ज्ञान ग्रहण नहीं कर सकतीं, वह मेरा मन आपकी कृपा से शुभ विचारों वाला हो।

ओ३म् येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥२१॥

यजु० ३४–२

शब्दार्थ –*येन* *– जिसके द्वारा,* ***धीराः*** *– धीर पुरुष,* ***मनीषिणः*** *– मनस्वी लोग,* ***यज्ञे*** *– देवपूजा, संगतिकरण तथा दान आदि में,* ***विदधेषु=विद् ज्ञाने+अथ=प्रारंभ*** *– प्रारम्भ से ही ज्ञान पूर्वक,* ***कर्माणि*** *– करने योग्य,* ***अपसः*** *कर्मों को,* ***कृण्वन्ति*** *– करते हैं,* ***यत्*** *– जो,* ***प्रजानाम्*** *– उत्पन्न हुए पदार्थों में या हम प्राणियों में,* ***अपूर्वम्*** *– अपूर्व है, विलक्षण है,* ***यक्षम्*** *– पूजनीय है,* ***तत्*** *– वह,* ***मे*** *– मेरा,* ***मनः*** *– मन,* ***शिव संकल्पम् अस्तु*** *– शुभ विचारों वाला हो।*

प्रजा को कष्ट देने वाले को राजा न बनाओ। [ऋक् ७-९४-७]

भावार्थ – हे प्रभो ! जिस मन के द्वारा शरीर से धीर तथा मन से मनस्वी लोग ज्ञानपूर्वक कर्मों को करते हैं, जो हम प्राणियों को आपकी अपूर्व, विलक्षण देन है– वह हमारा मन शुभ विचारों वाला हो। यह मन हमारे पास आपकी दी हुई एक ऐसी देन है जिसका सदुपयोग जीवन को सफल बनाना है, और जिसका दुरुपयोग जीवन को निरर्थक बनाना है।

ओ३म् यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥२२॥

यजु० ३४–३

शब्दार्थ – ***यत्*** – *जो,* ***प्रज्ञानम्*** – *ज्ञान का देने हारा है,* ***उत्*** – *और जो,* ***चेतः*** – *चेतन है और जो,* ***धृतिः*** – *धैर्य देने वाला है,* ***च*** – *और,* ***यत्*** – *जो,* ***प्रजासु*** – *मनुष्यों के,* ***अन्तः*** – *भीतर,* ***अमृतम् ज्योतिः*** – *अमर–ज्योति के रूप में विद्यमान है,* ***यस्मात्*** – *जिसके,* ***ऋते*** – *बिना,* ***किंचन*** – *कोई भी,* ***कर्म*** – *काम,* ***न*** – *नहीं,* ***क्रियते*** – *किया जाता,* ***तन्मे मनः शिव संकल्पम् अस्तु*** – *वह मेरा मन शुभ विचारों वाला हो।*

भावार्थ – हे प्रभो ! जो मेरा मन ज्ञान का साधन और चेतन है, जो विकट परिस्थितियों में मुझे धैर्य देता है, जो अमर–ज्योति के रूप में हमारे अन्तःकरण में बैठा हुआ है, जिसके बिना हम अंगुली तक नहीं हिला सकते, वह मेरा मन शुभ विचारों वाला हो।

ओ३म् येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥२३॥

यजु० ३४–४

शब्दार्थ – ***येन अमृतेन*** – *जिस अमर मन ने,* ***इदम्*** – *यह,* ***सर्वम्*** – *सब,* ***भूतम्*** – *भूतकाल को,* ***भुवनम्*** – *वर्तमान काल को,* ***भविष्यत्*** – *भविष्यत्–काल को,* ***परिगृहीतम्*** – *अपनी चिन्तन–शक्ति से चारों तरफ से मानो मुट्ठी में पकड़ा हुआ है,*

मातृभाषा-मातृभूमि और संस्कृति से राष्ट्र का मान बढ़ता है।
[अथर्व० ५-३-७]

येन – *जिसके द्वारा,* ***सप्त होता*** – *सात होताओं– २ आंखे, २ नाक, २ कान तथा १ मुख से,* ***यज्ञः*** – *जीवन–यज्ञ,* ***विततः*** – *विस्तृत हो रहा है,* ***तन्मे मनः शिव सङ्कल्पम् अस्तु*** – *वह मेरा मन शुभ विचारों वाला हो।*

भावार्थ – हे प्रभो ! जिस मन ने अपनी चिन्तन–शक्ति से भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् को मानो मुट्ठी में पकड़ रखा है, अर्थात् जो तीनों कालों का चिन्तन कर सकता है, और जिस मन की सहायता से शरीर–रूपी यज्ञ में आंख, नाक, कान तथा मुख 'होता' बनकर जीवन यज्ञ चला रहे हैं, वह मेरा मन शुभ विचारों वाला हो।

ओ३म् यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥२४॥

यजु० ३४–५

शब्दार्थ – ***यस्मिन्*** – *जिस मन में,* ***ऋचः साम यजूंषि*** – *ऋग्वेद, सामवेद तथा यजुर्वेद,* ***रथनाभौ*** – *रथ की नाभि में,* ***आराः इव*** – *आरों की तरह,* ***प्रतिष्ठिताः*** – *ठहरे हुए, जुड़े हुए हैं,* ***यस्मिन्*** – *जिस मन में,* ***सर्वम्*** – *सब,* ***प्रजानाम्*** – *प्राणियों का,* ***चित्तम्*** – *चिन्त,* ***ओतम्*** – *पिरोया हुआ है,* ***तन्मे मनः शिव संकल्पम् अस्तु*** – *वह मेरा मन शुभ विचारों वाला हो।*

भावार्थ – हे प्रभो ! जिस मन में रथ–नाभि में आरों की तरह ऋक्, साम, यजु पिरोये हुए हैं, जिसमें हर प्राणी का चिंतन समाया हुआ है, वह मेरा मन आपकी कृपा से शुभ विचारों वाला हो।

ओ३म् सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२५॥

य० अ० ३४, मं०–६

शब्दार्थ – ***अभीशुभिः*** – *लगामों से,* ***सुसारथिः*** – *अच्छा सारथि,* ***वाजिनः*** – *बलवान्,* ***अश्वान्*** – *घोड़ों को,* ***इव*** – *जैसे,* ***नेनीयते*** – *इधर–उधर घुमाता है, इस प्रकार जो,* ***मनुष्यान्***

परमेश्वर का आदेश है–कोई राष्ट्रद्रोही और जाति द्रोही न हो।

[ऋक् ७-९४-३]

नेनीयते – *मनुष्यों को घुमाता–फिरता है,* ***हृत् प्रतिष्ठम्*** – *हृदय में बैठा हुआ,* ***यत्*** – *जो,* ***अजिरम्*** – *गतिशील, चंचल तथा,* ***जविष्ठम्*** – *शीघ्रगामी मन है,* ***तन्मे मनः संकल्पम् अस्तु*** – *वह मेरा मन शुभ विचारों वाला हो।*

भावार्थ – हे प्रभो ! जैसे उत्तम कुशल सारथि घोड़ों को लगामों की सहायता से जिधर चाहता है घुमा ले जाता है, इसी प्रकार हृदय में बैठा यह गतिशील, चंचल, शक्तिमान् मन हमें भरमाये फिरता है। कृपा करो भगवन् ! ताकि यह मन शुभ संकल्पों वाला हो जिससे यह हमें सुपथ की ओर ले जाने वाला हो।

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र
ओ३म् स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते। शं राजन्नोषधीभ्यः
१ २३ १ २ ॥ २६ ॥

सामः १–१–३

शब्दार्थ – ***सः*** – *वह आप,* ***नः*** – *हमें,* ***पवस्व*** – *पवित्र करें,* ***गवे*** – *गौ आदि भोग्य–पदार्थ देने वाले पशुओं के लिये आप,* ***शम्*** – *कल्याण करें,* ***जनाय*** – *जन–साधारण के लिये,* ***शम्*** – *कल्याण करें,* ***अर्वते*** – *घोड़े आदि वाहन के योग्य पशुओं के लिये,* ***शम्*** – *कल्याण करें,* ***राजन्*** – *हे ! दीप्तियुक्त प्रभु,* ***वनस्पतिभ्यः*** – *वृक्ष–वनस्पति के लिये भी आप,* ***शम्*** – *कल्याण करें।*

भावार्थ – प्रभु से प्रार्थना है कि आप हमारे मन को पवित्र करें ताकि हमारे मन में सबके कल्याण की भावना का उदय हो। हम इतने पवित्र मन के हो जायें ताकि हम हृदय से जन–साधारण की, पशु मात्र तथा वनस्पति मात्र के कल्याण की याचना करें। हे प्रभो ! हमारी आपसे बार–बार यही प्रार्थना है कि आप सबका कल्याण करें।

ओ३म् अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु॥२७॥

जिसे सारा राष्ट्र चुने वही राजा हो। [अथर्व० ३-४-१]

अथर्व० १६–१५–५

शब्दार्थ – *नः – हमारे लिये,* ***अन्तरिक्षं*** *– अन्तरिक्ष को,* ***अभयम्*** *– अभय देने वाला,* ***करत्*** *– करो,* ***पश्चात्*** *– पीछे से, अदृश्य स्थान से,* ***अभयम्*** *– अभय प्राप्त हो,* ***पुरस्तात्*** *– सामने से, प्रत्यक्ष स्थान से,* ***अभयम्*** *– अभय प्राप्त हो,* ***उत्तरात्*** *– अति ऊंचे स्थान से,* ***अधरात्*** *– नीचे अर्थात् छिपे हुए स्थान से,* ***अभयत्*** *– अभय,* ***नः*** *– हमें,* ***अस्तु*** *– हो,*

भावार्थ – हे प्रभो ! आपकी कृपा से अन्तरिक्ष आदि लोकों में हमें किसी प्रकार का भय न हो, हमें सामने से, पीछे से, नीचे से, चारों दिशाओं से, कहीं से भी किसी प्रकार का भय न हो।

ओ३म् अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥२८॥

अथर्व कां० १६, सू० १५, मं० ६

शब्दार्थ – *नः – हमें,* ***मित्रात्*** *– मित्र से,* ***अभयम्*** *– अभय हो,* ***अमित्रात्*** *– क्षत्रु से,* ***अभयम्*** *– अभय हो,* ***ज्ञातात्*** *– जिसे हम जानते हैं उससे,* ***अभयम्*** *– अभय हो,* ***परोक्षात्*** *– जो परोक्ष है, जिसे हम नहीं जानते उससे,* ***अभयम्*** *– अभय हो,* ***नक्तम् अभयम्*** *– रात या अन्धकार में भय न हो,* ***दिवा अभयम्*** *– दिन को, प्रकाश में भी भय न हो,* ***सर्वा :*** *– सब,* ***आशाः*** *– दिशाएं,* ***मम*** *– मेरी, हमारी,* ***मित्रम्*** *– मित्र,* ***भवन्तु*** *– हों।*

भावार्थ – हे प्रभो ! आपकी दया से हमें मित्र–अमित्र, ज्ञात–अज्ञात, दिन–रात किसी तरफ से अकल्याण प्राप्त न हो। सब दिशाओं में हमें कल्याणकारी ही कल्याणकारी दिखलाई दें, हम सबका कल्याण करें, सब हमारा कल्याण करें। मित्र से अभय, ज्ञात से अभय, दिन से अभय का विशेष अर्थ है। अमित्र से तो मनुष्य सावधान रहता ही है, मित्र से चौकन्ना नहीं रहता, वह विश्वासघात करके पेट में छुरी चुभो देता है, अज्ञात से तो मनुष्य सावधान रहने का प्रबन्ध करता ही

है, ज्ञात–व्यक्ति ही ज्यादा नुक्सान पहुंचाने का प्रयत्न करता है, रात के लिये तो पहरेदार रखे ही जाते हैं दिन में मनुष्य असावधान हो जाता है। इसीलिये इस वेद–मंत्र में मित्र, ज्ञात, दिन से जो अनजाना भय आ सकता है उसके लिये प्रभु से अभय की याचना की गई है।

इति शान्तिकरणम्

अग्न्याधान मंत्र

इस मंत्र से घी का दीपक जला, कपूर को घी में डुबो कर अग्नि प्रज्वलित करें।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। गोभिल गृ० सूत्र १–१–११

इसके पश्चात् अगले मन्त्र से जलती हुई अग्नि को हवन कुण्ड के मध्य में चिनी समिधाओं में अग्नि का आधान करें।

ओ३म् भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा।
तस्यास्ते पृथिवी देवयजनि पृष्ठेग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे॥१॥

इस मंत्र से वेदी के बीच में अग्नि स्थापित करें। यजु अ० ३, मं० ५

शब्दार्थ – *ओ३म्* *– हे सर्वरक्षक प्रभो ! आप,* ***भूः*** *– सबकी सत्ता को बनाने वाले,* ***भुवः*** *– सत्ता का विस्तार करने वाले,* ***स्वः*** *– सुख देने वाले हो। हे,* ***ओं*** *– ओंकार स्वरूप प्रभु ! आप भूः भुवः स्वः हो,* ***द्यौः*** *– आकाश,* ***इव*** *– जिस प्रकार,* ***भूम्ना*** *– बहुतायत से सुशोभित है, इसी प्रकार,* ***पृथिवी*** *– यह भूमि,* ***व*** *– भी,* ***वरिम्णा*** *– श्रेष्ठता से भरपूर हो जाय, इस उद्देश्य से मैं,* ***तस्याः*** *– उस,* ***ते*** *– तेरे,* ***पृथिवी*** *– हे पृथिवी!,* ***देवयजनि*** *– देवों का यजन जिसमें किया जाता है, उसके,* ***पृष्ठे*** *– पीठ कर,* ***अग्निम्*** *– अग्नि को,* ***अन्नादम्*** *– हवि का भक्षण करने*

गायत्री जप सर्वश्रेष्ठ जपयज्ञ है। यह उपांशु [धीरे-धीरे] हो तो शतगुणा उत्तम है। मन-मन में जपना सहस्रगुणा उत्कृष्ट है।

[मनुस्मृति २-८३ से ८५ तक]

वाली को, ***अन्नाद्याय*** *– हवि भक्षण के लिये,* ***आदधे*** *– स्थापित करता हूं।*

भावार्थ – हे प्रभो ! जिस प्रकार आकाश बहुतायत से, विस्तीर्ण होकर शोभायमान है, इसी प्रकार यह भूमि श्रेष्ठता से विस्तीर्ण रूप में शोभायमान हो जाय, इस उद्देश्य से हवि का भक्षण कर उसे सूक्ष्म रूप से पृथिवी में सर्वत्र फैला देने, विस्तीर्ण कर देने के लिये अग्नि की स्थापना करता हूं क्योंकि अग्नि का काम उसमें जो हवनीय–पदार्थ डाला जाता है उसे सूक्ष्म करके जगत् के कौने–कौने में विस्तीर्ण कर देना, फैला देना है।

अग्नि प्रदीपन मंत्र

हवन कुंड में रक्खी अग्नि को निम्न मन्त्र से प्रदीप्त करें।

ओ३म् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च।
अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत॥

यजु० अ०, १५, मं० ५४

शब्दार्थ – ***अग्ने*** *– हे अग्ने !,* ***त्वम्*** *– तू,* ***उद्बुध्यस्व*** *– उठ जाग और,* ***प्रति जागृहि*** *– सदा जागती रह,* ***त्वम्*** *– तू अग्नि,* ***अयम् च*** *– और यह यजमान,* ***इष्टापूर्ते–इष्ट=अभिलषित*** *– जिन्हें हम चाह रहे हैं,* ***आपूर्त*** *– जो हमारे काम पूरे हो चुके हैं अथवा कुवां–तालाब–धर्मशाला–बाग लगाना आदि उपकार कार्यों का,* ***संसृजेथाम्*** *– सर्जन करो,* ***अस्मिन्*** *– इस,* ***सधस्थे*** *– सामूहिक स्थान या यज्ञ में,* ***अधि – उत्तरस्मिन्*** *– इससे भी अच्छे सामूहिक स्थान या यज्ञ में,* ***विश्वे देवाः*** *– सब विद्वान् लोग,* ***यजमानश्च*** *– और यजमान,* ***सीदत*** *– आकर बैठें।*

भावार्थ – हे प्रभो ! यह यज्ञाग्नि प्रदीप्त हो और यजमान तथा यज्ञाग्नि दोनों पारस्परिक सहयोग से नाना प्रकार के कार्यों को यज्ञ की भावना से करते रहें। जिन 'इष्ट' कार्यों को ये करना चाहते हैं या जिन्हें 'आपूर्त' अर्थात् पूरा कर चुके हैं, उन्हें यज्ञ की भावना से पूरा करें। 'अग्नि' का आधान उत्साह, भावना का

पापी पुरूष भूमि पर पड़े बालों की नाईं [तरह] होता है। [शत० १-५-५-५]

सूचक है। 'यज्ञ' सदा निःस्वार्थ भावना से करना चाहिये।

[समिधाधान के ४ मंत्रों से ३ समिधाधान]

जब हवन–कुण्ड की समिधाओं में अग्नि प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन, आम अथवा पलाशादि की आठ–आठ अंगुल की तीन समिधाएं घी में डुबोकर उनमें से एक–एक निकालकर नीचे लिखे एक–एक मंत्र से एक–एक समिधा को अग्नि में अर्पित करो।

ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय।
चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥
इदमग्नये जातवेदसे – इदं न मम॥१॥

आश्व० गृ० १, १०, १२

इस मंत्र से एक समिधा अग्नि के अर्पण करें।

शब्दार्थ – *हे जातवेदस्* – *सब पदार्थों में विद्यमान या उत्पन्न हुए पदार्थों को प्रकाशित करने वाली अग्नि !,* ***अयम्*** *– यह,* ***इध्म*** *– समिधा,* ***ते*** *– तेरा,* ***आत्मा*** *– शरीर है या मुझे सदा गतिशील रखने का साधन है,* ***तेन*** *– उससे,* ***इध्यस्व*** *– प्रदीप्त हो,* ***वर्धस्व*** *– स्वयं बढ़,* ***च*** *– और,* ***वर्धय*** *– हमें बढ़ा,* ***इत्*** *– अवश्य,* ***ह*** *– ही,* ***अस्मान्*** *– हमें,* ***प्रजया*** *– प्रजा से,* ***पशुभिः*** *– पशुओं से,* ***ब्रह्मवर्चसेन*** *– ब्रह्म–तेज से,* ***अन्नाद्येन*** *–अन्न से* ***(समेधय)*** *– समृद्ध कर,* ***इदम्*** *– यह आहुति,* ***अग्नये*** *– अग्नि के लिये है,* ***जातवेदसे*** *– जातवेदा के लिये है,* ***इदं*** *– यह,* ***न मम*** *– मेरे लिये नहीं।*

भावार्थ – भौतिक दृष्टि से अग्नि जो प्रज्वलित होकर सब पदार्थों को प्रकाश में लाती है उसका आत्मा, शरीर, समिधा है। समिधा से अग्नि प्रदीप्त होती है, धृत की आहुति से बढ़ती है। वैसे ही हम भौतिक साधनों के द्वारा जीवन में बढ़ें, फूलें–फलें। अग्नि की लपटों के समान हमारे धन–प्रजा–पशु फैलते चले जायें।

पापी जन फलते फूलते नहीं। **[अथर्व० १-२७-२]**

आध्यात्मिक दृष्टि से हम प्रभु से प्रार्थना करते है कि हे प्रभो ! जैसे आप द्वारा उत्पन्न की हुई भौतिक अग्नि अपने भक्ष्य अर्थात् समिधा को पाकर बढ़ती है, वैसे हम भी आपके द्वारा दिये हुए भोग्य पदार्थों को पाकर, उनका उचित रूप में सेवन कर सब प्रकार से आध्यात्मिक जीवन में बढ़ें।

ओ३म् समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।
आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा ॥ इदमग्नये–इदं न मम ॥२॥

यजु० ३–१

शब्दार्थ – *अग्निम्* – *अग्नि को,* ***समिधा*** – *समिधा के द्वारा,* ***दुवस्यत*** – *बढ़ाओ,* ***अतिथिम्*** – *अतिथि के समान अग्नि को,* ***घृतैः*** – *घृत आदि पदार्थों से,* ***बोधयत*** – *प्रबुद्ध करो, जागृत करो,* ***आ+अस्मिन्*** – *चारों ओर से इसमें,* ***हव्या*** – *हवनीय पदार्थों का,* ***जुहोतन*** – *हवन करो,* ***इदम्*** – *यह,* ***अग्नये*** – *अग्नि के लिये है,* ***इदम्*** – *यह,* ***न मम*** – *मेरे लिये नहीं है।*

भावार्थ – अग्नि, समिधा, घृत तथा सामग्री से उद्दीप्त होती है, जैसे अतिथि को घृतादियुक्त भोजन देने से वह प्रसन्न होता है। उसी प्रकार अग्नि में आहुति डालते हुए यजमान प्रभु से प्रार्थना करता है कि भगवन् ! जो कुछ मेरे पास है, वह सब आपका है, मेरा कुछ नहीं, 'इदं न मम'। इसी परोपकार भावना से जीवन यापन करना चाहिये।

ओ३म् सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन।
अग्नये जातवेदसे स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे–इदं न मम॥३॥

यजु० ३–२

उक्त दोनों मंत्रों से दूसरी समिधा अग्नि के अर्पण करें,

शब्दार्थ – ***सुसमिद्धाय–सु–सम्+इद्धाय*** – *अच्छे प्रकार प्रदीप्त हुए,* ***शोचिषे*** – *जगमगाते हुए,* ***जातवेदसे*** – *सब पदार्थों में वर्तमान,* ***अग्नये*** – *अग्नि के लिये,* ***तीव्रम्*** – *तपाया हुआ,* ***घृतम्*** – *घृत,* ***जुहोतन*** – *हवन करो,* ***इदम्*** – *यह आहुति,*

पापी पुरूष को यज्ञ करने का अधकार नहीं है। "न पापः पुरूषः याज्यः"
[ऐत० ब्रा० १९-३]

अग्नये – *अग्नि के लिये है,* ***जातवेदसे*** – *जातवेदा के लिये है,* ***इदं*** – *यह* ***न मम*** – *मेरे लिये नहीं है,*

ओ३म् तन्त्वा समिद्‌भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि।
बृहच्छोचा यविष्ठ्‌य स्वाहा॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे–इदं न मम॥४॥

यजु० अ० ३, मं० ३

इस मंत्र से तीसरी समिधा की अग्नि में आहुति दें।

शब्दार्थ – ***अंगिरः–अगि गतौ*** – *हे सर्वत्र गतिमान् अग्नि!,* ***तं त्वाम्*** – *उस तुझको,* ***समिद्‌भिः*** – *समिधाओं से और,* ***घृतेन*** – *घृत से,* ***वर्धयामसि*** – *बढ़ाते हैं। हे,* ***यविष्ठ्‌य–यु मिश्रणे अभिश्रणे*** – *वस्तुओं के बनाने और तोड़ने वालों में मूर्धन्य तू,* ***बृहत्*** – *बहुत,* ***शोचा*** – *दीप्तिमान् है,* ***इदम्*** – *यह,* ***अग्नये*** – *अग्नि के लिये है,* ***इदम्*** – *यह,* ***न मम*** – *मेरे लिये नहीं है।*

विशेष ज्ञातव्य – उक्त चारों मन्त्रों में दो बातों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। प्रत्येक मन्त्र के अन्त में **'स्वाहा'** और **'इदं न मम'** आते हैं। आगे भी जो मंत्र आयेंगे उनमें इन दोनों का प्रयोग होगा। 'स्वाहा' का निरुक्त (८। २०) में अर्थ दिया है– **'स्वाहेत्येतत् सु आहेति'** अर्थात् जो सुन्दर कथन हो उसे 'स्वाहा' कहते हैं। इस दृष्टि से 'स्वाहा' का अर्थ है–**'सूक्ति'** सुन्दर वचन। प्रत्येक मंत्र एक सूक्ति है, सुन्दर वचन है– इसलिये उस मंत्र के साथ **'स्वाहा'** शब्द का प्रयोग किया गया है यजमान भी अपनी बुराइयों को स्वाहा कहकर अग्नि को अर्पित करता हुआ कहता है हे प्रभो! मैं भी आपके पास अपनी बुराइयों को अग्नि में अर्पित कर निर्मल होना चाहता हूँ। जैसे **'स्वाहा'** शब्द भावपूर्ण है, वैसे **'इदं न मम'** भी अग्निहोत्र में प्रायः प्रत्येक मंत्र के साथ प्रयुक्त होता है। **'इदं न मम'** का अर्थ है– यह मेरा नहीं है। यह वैदिक–संस्कृति के एक–एक मंत्र में ओत–प्रोत है।

हिम्मत न हारो/वेदवेत्ता पुरुष ज्ञानाग्नि से सब पापों को जला देता है।
["मा मेर्मा रोक्" ऋक्][अथर्व० १-३१-२]

[पंच घृताहुति – मंत्र]

इस मंत्र में प्रजा, पशु, ब्रह्मवर्चस्, अन्न आदि पूर्ति के लिये प्रार्थना की गई है। इनकी संख्या ५ है, इसलिए यह मंत्र ५ बार पढ़ा जाता है पांचों बार घृत की आहुति दी जाती है।

ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्धवर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे–इदन्न मम॥ आश्व० गृ० १–१०–१२

[जल सेचन – मंत्र]

दायें हाथ की, अंजलि में जल लेकर वेदी के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशाओं में चारों ओर जल सिंचन करें।

ओ३म् अदितेऽनुमन्यस्व॥ गोभिल गृ० १

इस मंत्र से पूर्व दिशा में – हे ***(अदिते)*** – *अविनाशी जगदीश्वर !,* ***अनुमन्यस्व*** – *तू मुझे उत्तम बुद्धि प्रदान कीजिये।*

ओ३म् अनुमतेऽनुमन्यस्व॥ गोभिल गृ० २

इससे पश्चिम दिशा में – ***(अनुमते)*** – *हे ज्ञान स्वरूप परमेश्वर!,* ***अनुमन्यस्व*** – *तू मुझे उत्तम ज्ञान प्रदान कीजिये।*

ओ३म् सरस्वत्यनुमन्यस्व॥ गोभिल गृ० ३

इस मंत्र से उत्तर दिशा में – हे ***(सरस्वति)*** प्रशस्त ज्ञानमय परमेश्वर। तू मुझे सब विद्याओं से युक्त कीजिये।

ओ३म् देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥
यजु० अ० ३०, मं० १

इस मंत्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़कें–

हे देव – *दिव्य गुणो वाले,* ***सवितः*** – *सबके उत्पादक!* ***यज्ञम्*** – *यज्ञ को,* ***प्रसुव*** – *उत्पन्न करके बढ़ा,* ***यज्ञपतिम्*** – *यजमान को,* ***भगाय*** – *ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये,* ***प्रसुव*** – *बढ़ा,*

प्रलयकाल में सब ओर अन्धकार ही अन्धकार था। [ऋक् १०-१२९/३]

दिव्यः गंधर्वः–(गां पृथिवीं धारयतीति गन्धर्वः) – जिसके सहारे पृथिवी टिकी हुई है वह, ***केतपूः*** *– ज्ञान को पवित्र करने वाला,* ***नः*** *– हमारे,* ***केतम्*** *– ज्ञान को,* ***पुनातु*** *– पवित्र करे और,* ***(वाचस्पतिः – वाचम् –स्वदतु)*** *– वह वाचस्पति मेरी वाणी को पवित्र करे।*

२ आघारावाज्याहुति मंत्र

आघाराव=धारारूप से घी की धारा प्रवाह आहुति देना।

ओ३म् अग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये इदं न मम॥

अग्नि पर — यजु १०, ५

इससे वेदी के उत्तर भाग में आहुति दें।

ओ३म् सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय – इदं न मम॥

गोभिल १, ८, ४, यजु० १०–५

इससे वेदी के दक्षिण–भाग में आहुति दें।

२ आज्यभागाहुति मंत्र

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा॥ इदं प्रजापतये इदं न मम॥

यजु० २२, ३२

इससे वेदी के मध्य भाग में आहुति दें ।

ओ३म् इन्द्राय स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय – इदं न मम॥

यजु० २२–२७

इससे भी वेदी के मध्य–भाग में आहुति दें।

शब्दार्थ तथा भावार्थ – अग्नि, सोम, प्रजापति तथा इन्द्र के लिये आहुतियों का अर्थ है– ये चार आहुतियां अग्नि से प्रारम्भ होकर इन्द्र तक पहुँचती हैं।

[प्रातःकाल की आहुतियाँ]

यजमान तथा अन्य होता आदि प्रातःकाल हवन में निम्नलिखित मन्त्रों के साथ घी एवं सामग्री की आहुतियाँ दें।

परमेश्वर ने अपने एक पाद से ब्रह्माण्ड रचा, शेष तीन पाद उसी के प्रकाश में स्थित हैं। [ऋक् १०-९०-३]

ओ३म् सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥१॥ यजु० ३–९

'सूर्य के प्रकाश के प्रकाशक परमात्मा की प्रसन्नता के लिए हम स्तुति करते हैं।'

ओ३म् सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२॥ यजु० ३–९

'विद्या और ज्ञान के दाता सर्वेश्वर के अनुग्रह के लिये हम स्तुति करते है।'

ओ३म् ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥३॥ यजु० ३–९

'जिसकी ज्योति से सारा जगत जगमगा रहा है उसी जगदीश्वर की प्रसन्नता के लिए हम स्तुति करते हैं।'

ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरूषसेन्द्रवत्या।
जुषाणःसूर्यो वेतु स्वाहा ॥ ४ ॥ यजु० ३–१०

'सर्वलोक में व्यापक सर्वशक्तिमान सर्वनियन्ता सर्वेश्वर की प्रीति प्राप्त करने के लिए हम स्तुति करते हैं।'

[सायंकाल की आहुतियाँ]

निम्नलिखित मंत्रों के साथ घी और सामग्री की आहुतियाँ भी दें।

ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥१॥ यजु० ३–९

'अग्नि की ज्योति की भी ज्योति उस जगदीश्वर के अनुग्रह के लिए हम प्रार्थना करते हैं।'

ओ३म् अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥ २॥ यजु० ३–९

'अग्नि में ज्योति स्वरूप परमेश्वर की दीप्ति है, इसी की हम प्रार्थना करते हैं।'

ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ ३॥ यजु० ३–९

'(मौन आहुति) अग्नि की ज्योति में परमात्मा की ज्योति है, उसी की स्तुति करते हैं।'

ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजूराञ्येन्द्रवत्या जुषाणो आग्निर्वेतु स्वाहा ॥४॥ यजु० ३–१०

ऋचाएं [ऋक्–यजु०–साम०–अथर्ववेद] निराकार –अक्षर परमेश्वर में प्रतिष्ठित हैं। [ऋग्वेद १-१६४-३९]

'प्रकाशवान् सर्वप्रेरक महाप्रभु की रात्रि भी एक विभूति है। वह हमारे लिये प्रीतियुक्त, सुखप्रद हो। यह यज्ञ सफल हो, यही परमात्मा से हमारी प्रार्थना है।'

'तदन्तर निम्नलिखित मन्त्रों से प्रातः एवं सायं दोनों समय आहुति दें।'

ओ३म् भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। इदमग्नये प्राणाय इदन्न मम॥१॥

गोभिल गृ० १–३–१

परमेश्वर प्राणाधार है, वही प्राणवायु का पोषक है। उसी के लिए यह आहुति है, मेरे लिए नहीं।

ओ३म् भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा। इदं वायवेऽपानायइदन्न मम॥२॥

गोभिल गृ० १–३–२

'परमेश्वर प्राणपति है। वही अपान–वायु का रक्षक है। उसके लिए यह आहुति है, मेरे लिए नहीं।'

ओ३म् स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा। इदमादित्याय व्यानाय इदन्न मम ॥३॥

गोभिल गृ० १–३–३

'परमेश्वर मंगल–स्वरूप है। उसी के प्रताप से व्यान–वायु मनुष्य के लिए स्वास्थ्य दायक होता है। यह आहुति उसी के लिए है, मेरे लिए नहीं।'

ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदन्न मम ॥४॥

गोभिल गृ० १–३–४

'परमात्मा सबका स्वामी है। अग्नि वायु और सूर्य उसी के आधीन हैं। वही प्राण, अपान और व्यान से जीवन का पोषण और रक्षण करता है। यह आहुति उसी के लिए है। मेरे लिए नहीं।'

ओ३म् आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥ ५॥

तैति–गोभिल आरण्यक १०–१५, १–८–१४

'परमात्मा, सर्वरक्षक, सर्वव्यापक, ज्योतिर्मय, अविनाशी, सृष्टिकर्त्ता, सर्वाधार, अन्तर्यामी और सुख स्वरूप है।'

परमेश्वर की प्रतिमा [मूर्ति] नहीं है। [यजु॰३२-३]

ओ३म् यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरू स्वाहा ॥ ६॥ यजु० ३२–१४

हे ज्ञान स्वरूप परमेश्वर ! जिस मेधा बुद्धि का आश्रय लेकर मनुष्य उच्चपद प्राप्त कर लेता है उसी मेधा से हमें अलंकृत करें।

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव स्वाहा ॥७॥ यजु० ३०–३

इस मंत्र का अर्थ पहले दिया जा चुका है।

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम स्वाहा॥८॥

इस मंत्र का अर्थ पहले दिया जा चुका है।

[पूर्णाहुति मंत्र]

ओ३म् सर्वं वै पूर्ण ँ स्वाहा। गोभिल गृहय सू० १–८–२६

मन्त्र को तीन बार बोलकर पूर्णाहुति करें।

यदि कोई अधिक आहुतियाँ देना चाहे, तो ऋषि दयानन्द के निर्देशानुसार गायत्री मन्त्र एवम् विश्वानि देव–मंत्र की जितनी आहुतियाँ चाहें उतनी आहुतियाँ अग्ने नये सुपथा दैनिक कर्म, के अन्तिम मन्त्र के पश्चात् देवें।

विशेष यज्ञ की आहुति

[आघारावाज्याहुति]

ओ३म् अग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये–इदन्न मम ॥१॥

इस मन्त्र से वेदी के उत्तर भाग अग्नि में

ओ३म् सोमाय स्वाहा॥ इदं सोमाय–इदन्न मम ॥ २॥

गो० गृ० प्र० १। खं० ८। सू० ३, ४

इस मन्त्र से वेदी के दक्षिण भाग में प्रज्ज्वलित समिधा पर आहुति देनी। तत्पश्चात्–

परमेश्वर का कोई प्रतिमान [मापने वाला] नहीं हैं। [ऋक् ४-८५-४]

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥३॥

कात्या० श्रौ० अ० ३। सू० १२

ओ३म् इन्द्राय स्वाहा॥ इदमिन्द्राय—इदन्न मम ॥४॥

कात्या० श्रौ० अ० ३। सू० १६

दो आघारावाज्याहुतियां तथा दो आज्यभागाहुतियां देने के पश्चात् ४ व्याहृति आहुतियां दें, जो निम्न हैं :

ओं भूरग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये—इदं न मम॥
ओं भुवर्वायवे स्वाहा॥ इदं वायवे—इदं न मम॥
ओं स्वरादित्याय स्वाहा॥ इदमादित्याय—इदं न मम॥
ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा॥
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः इदं न मम ॥

गोभिल गृह्य० १, ८, १४

चारों व्याहृतियों का शब्दार्थ –

भूः *– पृथिवी स्थानीय,* ***अग्नये*** *– अग्नि के लिये,* ***स्वाहा*** *– यह आहुति देता हूं,* ***भुवः*** *– अन्तरिक्ष स्थानीय,* ***वायवे*** *– वायु के लिये,* ***स्वाहा*** *– यह आहुति देता हूं,* ***स्वः*** *– द्यु–स्थानीय,* ***आदित्याय*** *– सूर्य के लिये,* ***स्वाहा*** *– यह आहुति देता हूं,* ***न मम*** *– मेरे लिये कुछ नहीं।*

[स्विष्टकृत् आहुति]

उक्त ४ घृताहुतियों के पश्चात् निम्न मन्त्र से घी अथवा भात की आहुति देनी चाहिये।

ओ३म् यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत् स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते इदन्नमम। आश्व० गृ० १, १०, २२

शब्दार्थ – ***अस्य कर्मणः*** – *इस कर्म का,* ***यत्*** – *जो,* ***अति अरीरिचम्*** – *अज्ञान से अधिक किया है,* ***यत् वा*** – *अथवा,* ***इह*** – *यहां,* ***न्यूनम् अकरम्*** – *न्यून किया है,* ***तत्*** – *उसको,* ***सु–इष्ट–कृत*** – *इष्ट अर्थात् भावना द्वारा उचित रूप से किया हुआ,* ***अग्निः*** – *आगे ले जाने वाले प्रभु !,* ***विद्यात्*** – *आप जानिये अर्थात् मानिये। वह प्रभु,* ***मे*** – *मेरे,* ***सर्वम्*** – *सब,* ***सु+इष्टम्*** – *उत्तम मनोरथ का,* ***सुहुतम्*** – *यथोचित रूप से आहुति किया हुआ,* ***करोतु*** – *करे। हे,* ***सु+इष्ट+कृते*** – *उत्तम मनोरथ को सिद्व करने हारे !,* ***सु+हुत+हुते*** – *यज्ञ की आहुतियों को सुहुत करने हारे,* ***सर्व प्रायश्चित आहुतीनाम्*** – *सब प्रायश्चित्तों के लिये आहुतियां दी जाती हैं जिसके लिये ऐसे,* ***कामान् अग्नये समर्धयित्रे*** – *कामनाओं को आगे ही आगे पूर्ण करने हारे प्रभो !,* ***नः*** – *हमारी,* ***सर्वान्*** – *सब,* ***कामान्*** – *कामनाओं को,* ***समर्धय*** – *पूर्ण करो,* ***स्वाहा*** – *इसी सुन्दर भावना से यह पुकार करता हूं,* ***इदम्*** – *यह आत्म–समर्पण,* ***सु–इष्ट–कृते*** – *मनोरथों को पूर्ण करने हारे,* ***अग्नये*** – *प्रभु के लिये है,* ***इदं न मम*** – *इसमें मेरा कुछ नहीं है।*

मौन रहकर मन में प्राजापत्याहुति दें।

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा॥ इदं प्रजापतये–इदं न मम॥

पार० गृह्य० १, ६, ३, यजु० २२–३२

मौन प्राजापत्याहुति का अर्थ – इस आहुति को मौन देने का अभिप्राय यह है कि अब तक मन्त्रोच्चारण–पूर्वक मनन करें।

पवमान आहुतियां

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय–इदं न

स्त्रियों को यज्ञ करने का अधिकार है। [अथर्व०६-१२२-५]

मम॥१॥ ऋक० ६–६६–१६, यजु० अ० १६, मं० ३८

शब्दार्थ– भूः – *सत्ता का स्वरूप,* **भुवः** – *शुद्ध क्रिया –* **स्वः** – *सुखस्वरूप,* **अग्ने** – *प्रकाश स्वरूप प्रभो !,* **नः** – *हमारे,* **पवसे** – *पवित्र जीवन के लिये,* **आयूंषि** – *दीर्घ–आयु,* **ऊर्जम्** – *बल तथा,* **इषम्** – *अन्नादि भोग्य पदार्थों को,* **आसुव** – *उत्पन्न करो और,* **दुच्छूनाम्**– *दुर्विचारों को,* **आरे** – *दूर,* **बाधस्व** – *हटा दो।*

भावार्थ – हे सत् चित् आनन्द स्वरूप प्रभो ! हमारा जीवन पवित्र हो, आयु दीर्घ हो, हमें शारीरिक तथा मानसिक बल प्राप्त हो, हमारे जीवन में आने दाली सभी बाधाएं दूर हों।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः।
तमीमहे महागयं स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय इदं न मम॥२॥

ऋक० ६–६६–२०, यजु० २६–६

शब्दार्थ – ***भूः भुवः स्वः*** – *पूर्ववत्,* **अग्निः** – *आप सबके प्रकाशक,* **ऋषिः** – *ज्ञान देने वाले हो,* **पवमानः** – *पवित्र करने वाले हो,* **पाञ्चजन्यः** – *पंचों के लिये हितकारी हो– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र–निषाद,* **पुरोहितः** – *सृष्टि के पहले विद्यमान हो,* **तम्** – **महागयम्** – *महती स्तुति वाले आपको,* **ईमहे** – *हम हृदय से चाहते हैं।*

भावार्थ – हे सबके प्रकाशक, मार्ग–दर्शक, ज्ञान देने हारे, पवित्र करने वाले प्रभो ! आप समाज के हर वर्ग के हितकारी हो, आपको हम हृदय से चाहते हैं।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्।
दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय–इदं न मम॥३॥

ऋ० मं० ६, सू० ६६, मं० २१, यजु० ८–३८

शब्दार्थ –***भूः भुवः स्वः*** – *पूर्ववत्। हे,* **अग्ने** – *प्रकाशस्वरूप प्रभो !,* **स्वपाः** – *उत्तम कार्य करने वाले लोगों को,* **पवस्व** – *पवित्र करो–* **अस्मे वर्चः** – *मुझे, वर्चस्व तथा,* **सुवीर्यम्** – *पराक्रम प्रदान करो,* **मयि** – *मुझ में,* **रयिं** – *ऐश्वर्य तथा,* **पोषम्** – *पुष्टि*

पुरुष की आयु १०० वर्ष है। [शत० १-९-३-१९+ तैत्तरीयब्रा० १-७-६]

को, ***दधत्*** *– धारण कराओ।*

भावार्थ – हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! उत्तम काम करते हुए हमारी भावना भी पवित्र हो। आप हमें वर्चस्व दीजिये, आध्यात्मिक तथा मानसिक बल दीजिये, साथ ही पराक्रम अर्थात् शारीरिक बल भी दीजिये। ऐश्वर्य दीजिये जो ह्रास की तरफ न ले जाये, पुष्टि और उन्नति की तरफ ले जाय।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा। इदं प्रजापतये–इदं न मम ॥ ४॥

ऋ० मं० १०, सू० १२१, मं १० / यजु० २३–६५

इसका ऋषि दयानन्द का किया अर्थ 'ईश्वर–स्तुति–प्रार्थना–उपासना' के ७वें मंत्र में दिया जा चुका है।

अष्टाज्याहुति मंत्र

उक्त ४ मंत्रों से घृत की चार आहुतियां करके, 'अष्टाज्याहुति' के निम्नलिखित मन्त्रों से सर्वत्र मङ्गल कार्यों में ८ घृत की आहुतियां देवें। सामग्री सहित।

ओ३म् त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा॥ इदमग्निवरुणाभ्याम्–इदं न मम ॥ १ । ऋक० ४–१–४

शब्दार्थ – ***हे अग्ने*** *– प्रकाशस्वरूप प्रभो !,* ***त्वम्*** *– तू,* ***वरुणस्य देवस्य*** *– दिव्य गुणों वाले राजा के,* ***हेलः*** *– अवहेलना अर्थात् अनादर को,* ***विद्वान्*** *– जानता है, उससे,* ***नः*** *– हमें,* ***अवयासिसीष्ठाः*** *– पृथक् रख, अर्थात् हमें ऐसी मति दे जिससे हम जनता द्वारा चुने हुए राजा के संविधान का अनादर न करें। मैं,* ***यजिष्ठः*** *– शुभ कर्म करने वालों में श्रेष्ठ,* ***वह्नितमः*** *– अग्निहोत्र करने वालों में श्रेष्ठतम,* ***शोशुचानः*** *– दीप्तिमान्, कीर्तिमान् होऊं,* ***अस्मत्*** *– हमसे,* ***विश्वा द्वेषांसि*** *– सब द्वेष,* ***प्रभुमुग्धि*** *– मुक्त करो,* ***स्वाहा*** *– यह आहुति अग्नि तथा वरुण*

काल अनन्त है, अपरिणामी है। प्रलय में भी रहता है। [ऋक् १-१६४-११]

के लिये समर्पण है, इसमें मेरा कोई अधिकार नहीं।

भावार्थ – हे प्रभो ! देश के संविधान, राज्य व्यवस्था का मैं अनादर न करूँ। यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठतम, कीर्तिमान् होऊं, मेरे हृदय में किसी के प्रति द्वेष–भावना न हो।

ओ३म् स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ।
अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा॥
इदमग्नीवरुणाभ्याम्–इदं न मम ॥ २ ॥ ऋ० मं० ४, सू० १, मं० ४, ५

शब्दार्थ – ***अग्ने*** *– हे प्रकाशस्वरूप प्रभो !,* ***सः*** *– वह,* ***त्वम्*** *– तू,* ***नः*** *– हमारा,* ***अवमः*** *– रक्षक,* ***भव*** *– हो,* ***अस्याः*** *– इस,* ***उषसः*** *– उषाकाल के,* ***व्युष्टौ*** *– प्रकाश में,* ***ऊती*** *– रक्षा के द्वारा,* ***नेदिष्टः*** *– समीपतम,* ***भव*** *– हो जा,* ***रराणः*** *– पुकारा हुआ तू,* ***नः*** *– हमारे,* ***वरुणम्–वृञ् वरणे*** *– सब तरफ से आवरण की तरह घेरने वाले दुःखों को,* ***अवयक्ष्व*** *– दूर कर,* ***मृडीकम्*** *– सुख को,* ***वीहि*** *– प्राप्त कराओ,* ***सुहवः*** *– सुगमता से जिसे पुकारा जा सके ऐसा तू,* ***नः*** *– हमारे लिये,* ***एधि*** *– हो,* ***स्वाहा*** *– यह आहुति अग्नि तथा वरुण को समर्पित है, इसमें मेरा कुछ नहीं।*

भावार्थ – हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! आप हमारे रक्षक हूजिये। इस उषाःकाल की प्रथम किरणों के फूटते ही हम आपके समीपतम होकर आपके रक्षा के हाथ की याचना करते हैं। आप अपनी करुणामय दृष्टि से दुःखों को दूर करो। आपका द्वार सबके लिये एक समान खुला है।

ओ३म् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय।
त्वामवस्युराचके स्वाहा॥ इदं वरुणाय–इदं न मम॥३ ॥
ऋ० मं० १, सू० २५, मं० १६

शब्दार्थ – ***हे वरुण*** *– सबकी पुकार सुनने वाले प्रभो !,* ***अद्य*** *– आज, अभी,* ***मे*** *– मेरी,* ***हवम्*** *– पुकार को,* ***श्रुधि*** *– सुनो,* ***च*** *– और,* ***मृडय*** *– मेरा दुःख दूर कर, मुझे सुखी करो।,* ***अवस्युः*** *– रक्षा की याचना करता हुआ मैं,* ***त्वाम्*** *– तुझे,* ***आ चके*** *–*

सूर्य स्थावर [जड़] और जंगम [चेतन] का जीवन है।
[ऋक् १-११५-१+ यजु० ७-४२]

निहारता हूं।

भावार्थ – हे सब पर समान दया करने वाले, वरुण प्रभो ! मैं दीन–दुखिया अपनी पुकार लेकर आया हूं, मेरी पुकार भी सुनो, मेरा दुःख दूर करो। प्रभो ! आपके चरणों में हम समर्पित है।

ओ३म् तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा॥ इदं वरुणाय–इदं न मम ॥ ४ ॥ ऋ० मं० १, सू० २४, मं० ११

शब्दार्थ – ***ब्रह्मणा*** – *यज्ञ द्वारा,* ***वन्दमानः*** – *आपकी स्तुति करता हुआ,* ***तत्*** – *उस,* ***त्वा*** – *आपको,* ***यामि*** – *प्राप्त होता हूँ,* ***यजमानः*** – *यजमान,* ***हविर्भिः*** – *आहुतियों से,* ***आशास्ते*** – *आशा करता है,* ***वरुण*** – *हे वरुण !,* ***इह*** – *इस शुभ यज्ञ में,* ***अहेडमानः*** – *मेरी अवहेलना न करते हुए,* ***बोधि*** – *मुझे बोध कराओ मैं आपका हो सकूं। हे,* ***उरुशंस*** – *महान् कीर्ति वाले प्रभो,* ***नः*** – *हमारी,* ***आयुः*** – *जीवन,* ***मा प्रमोषीः*** – *असमय में नष्ट न हो।*

भावार्थ – हे वरुण देव ! मैं यज्ञ द्वारा आपकी स्तुति करता हुआ आपकी शरण में हूँ। मैं अपने 'मैं–पन' को आहुति के रूप में यज्ञ की अग्नि में भस्म कर आपके पास हूँ आप मुझे अपना बना लो। हे भगवन्। आपकी कीर्ति दिग्दिगंत में व्याप रही है, मैं अपना जीवन आपको अर्पित कर मृत्यु–भय से निडर रहूँ।

ओ३म् ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः –इदं न मम ॥ ५॥ कात्यायन श्रौत० २५, १, ११

शब्दार्थ – ***हे वरुण*** – *वरणीय प्रभो !,* ***ये*** – *जो,* ***ते*** – *तेरे,* ***शतम्*** – *सैकड़ों और,* ***सहस्रं*** – *हजारों,* ***यज्ञियाः*** – *सृष्टि–सम्बन्धी,* ***महान्तः*** – *बड़े,* ***पाशाः*** – *बन्धन अर्थात् नियम,*

परमेश्वर शुभ कर्म करने वाले आर्यों और दुष्ट पुरुषों को पहिचानता है।
[ऋक् १-५१-८+ऋक् ९-६८-३०]

विततः *– सर्वत्र फैले हुए हैं,* ***तेभिः*** *– उनसे,* ***नः*** *– हमको,* ***अद्य*** *– आज,* ***सविता*** *– शुभ कर्मों की प्रेरणा करने वाले गुरु लोग,* ***उत्*** *– और,* ***विष्णुः*** *– कर्मों में व्यापक, कर्मों के धर्माधर्म को जानने वाले न्यायाधीश,* ***विश्वे मरुतः – स्वर्काः*** *– वे तपस्वी लोग,* ***मुञ्चन्तु*** *– मुझे पाप से मुक्त करें।*

भावार्थ – हे प्रभो ! आपके संसार में सैकड़ों और हजारों नियम हैं जिनके पाश से मनुष्य बंधा हुआ है। उन सब कर्म के बन्धन से छुड़ाकर हमें भव–सागर को पार करने में सहायता दो।

ओ३म् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयाऽसि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजॅं स्वाहा॥
इदमग्नये अयसे–इदं न मम ॥ ६॥ कात्यायन श्रौत०, २५, १, ११

शब्दार्थ – ***हे अग्ने*** *– अग्निरूप भगवन् ! आप,* ***अयाः****–अय गतौ – गतिशील* ***असि*** *– हैं,* ***च*** *– और,* ***अनभिशस्ति+पाः*** *– अभिशस्ति=प्रशंसा, अनभिशस्ति= अप्रशंसनीय कार्यों, उससे रक्षा करने वाले हैं,* ***सत्यम् इत्*** *– यह सत्य है कि,* ***त्वम्*** *– आप,* ***अयाः असि*** *– अप्रशंसनीय, निन्दनीय कार्यों से हमारी रक्षा करने वाले है,* ***अयाः*** *– सब जगह पहुंचे होने के कारण,* ***नः*** *– हमारे,* ***यज्ञम्*** *– शुभ कार्यों को,* ***वहासि*** *– वहन करते है,* ***अयाः*** *– सर्वगामी होने के कारण,* ***नः*** *– हमें,* ***भेषजम्*** *– अप्रशंसनीय कर्मो के निवारण की औषधि,* ***धेहि*** *– दीजिये,* ***स्वाहा*** *– इसी कामना से मैं यह आहुति दे रहा हूं।*

भावार्थ – हे प्रभो ! आपकी गति सब जगह है। आप हमारे हृदय के भावों को भी जानते हैं। भगवन् ! यह सत्य है कि आप हमारी इन कुत्सित, गर्हित विचारों से रक्षा कर सकते हो। अपनी उस औषधि का चमत्कार दिखलाओ जिससे हमारे विचार पवित्र रहें और हम निन्दनीय विचारों के जाल में न फंसे।

स्वर्ण दीर्घायु का हेतु होता है। "निष्कग्रीवः" पुरुष प्रशंसित भी होता है। [शत० ४-३-२४, ऋक् ५-१९-२३, अथर्वेद १९-२६-१, यजु० ३४-५१]

ओ३म् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा॥
इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च—इदं न मम ॥ ७॥

ऋ० मं० १, सू० २४, मं० १५

शब्दार्थ – ***वरुण*** – *हे वरणीय प्रभो! तू,* ***अस्मत्*** – *हमसे,* ***उत्तमं*** – *सबसे ऊपर के,* ***पाशम्*** – *जाल को,* ***उत्*** – *उतार दे,* ***अधमं*** – *नीचे के जाल को,* ***अव*** – *हटा दे,* ***मध्यमं*** – *बीच के जाल को,* ***विश्रथाय*** – *शिथिल कर दे,* ***अथ*** – *और अब इन जालों से मुक्त होकर,* ***वयम्*** – *हम,* ***तव*** – *तेरे,* ***आदित्यव्रते*** – *अदिति=अखंडित, व्रत=नियम, अखंडित नियमों में,* ***अदितये*** – *मोक्ष के लिये,* ***अनागसः*** – *निष्पाप होकर,* ***स्याम*** – *मोक्ष के अधिकारी हों।*

भावार्थ – हे प्रभो! हम ऊपर से, नीचे से, बीच में से पापों के जाल में फंसे पड़े हैं। आप कृपा से हम आपके बनाये अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि महाव्रतों का पालन करें और निष्पाप होकर मोक्ष—पथ के राही बनें।

ओ३म् भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञꣳहिꣳसिष्टिं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा ॥
इदं जातवेदोभ्याम्—इदं न मम ॥ ८॥ यजु० अ० ५, मं० ३

शब्दार्थ – ***नः*** – *हमारे लिये यजमान और यजमान पत्नी—ये दोनों,* ***समनसौ*** – *समान मन वाले,* ***सचेतसौ*** – *समान भावों वाले,* ***अरेपसौ*** – *पाप—रहित, शुद्ध स्वभाव वाले,* ***भवतम्*** – *हों,* ***यज्ञम्*** – *शुभ कार्यों को तथा,* ***यज्ञपतिम्*** – *शुभ कर्मों के करने वाले को,* ***मा*** – ***हिंसिष्टम्*** – *किसी की हिंसा न करें,* ***जातवेदसौ*** – ***अद्य*** – *आज से,* ***येनः*** – *हमारे लिये,* ***शिवौ*** – *कल्याणप्रद,* ***भवतम्*** – *हों,* ***स्वाहा*** – *इसी भावना से यह आहुति हम दे रहे हैं।*

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

हम परस्पर द्वेष और कुटिलता न करें। **["अपद्वेषो अपह्वरो"-ऋग्वेद]**

शब्दार्थ – ***ओ३म्*** – *यह प्रभु का मुख्य नाम है। यह,* ***भूः*** – *प्राणों का प्राण,* ***भुवः*** – *दुखनाशक,* ***स्वः*** – *सुखस्वरूप है,* ***तत्*** – *उस,* ***सवितुः*** – *सकल जगत के उत्पादक,* ***देवस्य*** – *प्रभु के,* ***वरेण्यम्*** – *ग्रहण करने योग्य,* ***भर्गः*** – *विशुद्ध तेज को हम,* ***धीमहि*** – *धारण करे,* ***यः*** – *जो प्रभु,* ***नः*** – *हमारी,* ***धियः*** – *बुद्धियों को,* ***प्रचोदयात्*** – *सन्मार्ग में प्रेरित करें।*

[पूर्णाहुति]

निम्नलिखित मंत्र से स्रुवा को घृत से भरके पूर्णाहुति करें।

ओ३म् सर्व वै पूर्णं स्वाहा ।१। ओ३म् सर्वं वै पूर्णं स्वाहा ।२। ओ३म् सर्वं वै पूर्ण ं स्वाहा ।३। (शत० ब्रा०) कण्डिका ५–२–२–१
गोभिल गृहन १–८–२६

शब्दार्थ – ***सर्वम्*** – *सब,* ***वै*** – *यज्ञ,* ***पूर्णम्*** – *पूर्ण हो,* ***स्वाहा*** – *सच्चे हृदय की पुकार पूर्ण हों।*

पूर्णा हुति के पश्चात् श्रद्धापूर्वक शेष घी से आहुति करें।

ओ३म् पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत। वस्नेव विक्रीणावहाऽइषमूर्जं शतक्रतो॥ यजु० ३–४६

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदुच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥ बृहधारण्या० ५–१/१ (ब्राह्मण ग्रन्थ)

ओ३म् वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्त्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः यजु० १–३

[तेज प्रार्थना]

ओ३म तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि ॥१॥ ओ३म् आयुर्दा अग्नेऽसि आयुर्मे देहि ॥२॥ ओ३म् वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि ॥३॥ ओ३म् अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण ॥४॥
यजु० ३–१७

प्रभु का आदेश है-" कभी झूठ न बोलो" इससे कुल [वंश] सूख जाता है।
[ऋग्वेद ७-६७-३, ऋग्वेद ७-११४-१३]

हे शरीर के रक्षक मेरे शरीर की रक्षा कीजिए। हे आयु दाता मुझे आयु दीजिये। दे दीप्ति दाता, मुझे दीप्ति दीजिये जो कुछ मेरे शरीर में कमी है उसकी पूर्ति कर दीजिये।

ओ३म् तेजोऽसि तेजोमयि धेहि। ओ३म् वीर्यंऽसि वीर्यं मयि धेहि॥
ओ३म् बलमसि बलं मयि धेहि। ओ३म् ओजोऽस्योजो मयि धेहि॥
ओ३म् मन्युरसि मन्युर्मयि धेहि। ओ३म् सहोऽसि सहो मयि धेहि॥

यजु० १६–६

हे ईश्वर! आप तेजरूप हो, मुझे भी तेजस्वी बनाओ। आप वीर्यवान् हो मुझमें भी सर्वोत्तम बल स्थापित करो। आप पराक्रम हो, मुझे भी महान पराक्रमी बनाओ, आप ओजः स्वरूप हो मुझमें ओज का आधान करो। आप मन्यु हो, मुझमें भी मन्यु का आधान करो आप सहनशील हो मुझे भी सहिष्णु बनाओ।

ईश्वर उपदेश देता है हे मनुष्यों! इष्ट फल देवे वाली ज्ञानमयी वेदवाणी मेरे द्वारा प्रशंसित की गई है। यह सरस्वती द्विजों को पवित्र करने वाली है। यह आयु–प्राण, प्रजा–गो, पशु आदि कीर्ति और धन के देने वाली है। अपने शुभ कर्मों को मुझे अर्पित कर ब्रह्म लोक को प्राप्त करो। अर्थव० १६–७१–१

[आशीर्वाद]

यजमान हेतु आचार्य द्वारा आशीर्वाद तथा पुष्पवर्षा अन्यों के द्वारा भी होनी चाहिये।

ओ३म् सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः। ओ३म् सौभाग्यमस्तु। ओ३म् शुभं भवतु ॥ ओ३म् स्वस्ति। ओ३म् स्वस्ति। ओ३म् स्वस्ति।

यजु० १२–४४,
अथर्व०१६–४२–३

राष्ट्रीय प्रार्थना

ओ३म् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूरऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतांम् दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशु सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो

प्रजापति ने वेद आदि समस्त विद्याओं की रक्षा के लिये ब्राह्मण को, राष्ट्र रक्षा केलिये क्षत्रिय को, मरुतों(वायु) के कर्म के लिये वैश्य को तथा शरीर साध्य शुश्रूषादि सेवा भार के तप को उठाने के लिये शुद्र को बनाया है।
[तैत्तिरीय ब्राह्मण ३-४-१]

युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।

यजु० अ० २२ मन्त्र २२

ब्रह्मन्! स्वराष्ट्र में हों द्विज ब्रह्म तेजधारी।
क्षत्रिय महारथी हों अरिदल विनाशकारी॥
होवें दुधारू गौवें, पशु अश्व आशुवाही।
आधार राष्ट्र की हों, नारी सुभग सदा ही॥
बलवान् सभ्य योद्धा, यजमान–पुत्र होवें।
इन्छानुसार वर्षें, पर्जन्य ताप धोवें॥
फल–फूल से लदी हों, औषध अमोघ सारी।
हो योग – क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी॥

संगठन सूक्त

ओ३म् सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर॥ १॥

ऋग्वेद० १०–१९१–१

हे प्रभो तुम शक्तिशाली हो बनाते सृष्टि को।
वेद सब गाते तुम्हें हैं कीजिए धन वृष्टि को॥

ओ३म् संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते॥ २॥

ऋग्वेद० १०–१९१–२

प्रेम से मिलकर चलो बोलो सभी ज्ञानी बनो।
पूर्वजों की भांति तुम कर्त्तव्य के मानी बनो॥

ओ३म् समानो मन्त्रः समितिः समानी, समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मंत्रमभि मंत्रये वः, समानेन वो हविषा जुहोमि॥ ३॥

ऋग्वेद० १०–१९१–३

हों विचार समान सबके चित्त मन सब एक हों।
ज्ञान देता हूँ बराबर भोग्य पा सब नेक हो॥

योग्य पुत्र पिता का आश्रय होता है, वही धन कमाता हैं। [शत० १२-२-३-४]

ओ३म् समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ४॥

ऋग्वेद० १०–१६१–४

हों सभी के दिल तथा संङ्कल्प अ–विरोधी सदा।
मन भरे हों प्रेम से जिससे बढ़े सुख सम्पदा॥

शान्ति पाठः

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँशान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं ँशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि

ऋजु० ३६–१७

ओ३म् शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

"अमावस्या की आहुतियां"

यदि अमावस्या को अग्निहोत्र (देवयज्ञ) किया जाये तो अग्निहोत्र की स्विष्टकृत्, आहुति से पहले निम्नलिखित आहुतियां, भात, खीर, हलवा, लड्डू, गुड़, शक्कर आदि मिष्टान्न से प्रदान करें।

ओ३म् अग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये–इदं न मम॥1॥

ओ३म् इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहा॥ इदमिन्द्राग्नीभ्याम्–इदं न मम॥2॥

ओ३म् विष्णवे स्वाहा॥ इदं विष्णवे–इदं न मम॥3॥

गोभिल गृह्य सूत्र १–८–२१–२३

"पूर्णमासी की आहुतियां"

ओ३म् अग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये–इदं न मम॥1॥

ओ३म् अग्निषोमाभ्यां स्वाहा॥ इदमग्नीषोमाभ्याम्–इदं न मम॥2॥

ओ३म् विष्णवे स्वाहा॥ इदं विष्णवे–इदं न मम॥3॥

ईश्वर सर्वज्ञ है, जीव अल्पज्ञ है, प्रकृति जड़ है तीनों अनादि हैं।
[ऋग्वेद १-१६४-१०-४४]

तृतीयः "पितृयज्ञ"

अग्निहोत्र विधि पूर्ण करके तीसरा पितृयज्ञ करे, अर्थात् जीते हुए माता–पिता आदि की यथावत् सेवा करनी पितृयज्ञ कहाता है।

"चतुर्थः बलिवैश्वदेवयज्ञ विधि"

विश्वदेव का अर्थ है वह यज्ञ जिसमें सम्पूर्ण विश्व का देव अंश सामने आ जाये। सूर्य, पृथिवी आदि जड़ पदार्थों, ब्राह्मण, राजा आदि चेतनों में देव अंश है। यहां दश आहुति घृतमिश्रित भात की अथवा क्षार–लवण रहित अन्न की चूल्हे की अग्नि में अथवा अन्न अंगीठी आदि की अग्नि में करनी हैं। ये आहुति चिकने तथा मीठे पदार्थों की करनी चाहिएं जिससे आँखों को हानि न हो।

वैश्वदेव की दस आहुतियां निम्नलिखित हैं।

ओ३म् अग्नये स्वाहा।१। मैं अभिमान दोष रहित होकर संकल्पाग्नि की रक्षा कर सकूँ।

ओ३म् सोमाय स्वाहा।२। मुझमें सोम मधुर अंश सदा बना रहे, इसी की यह आहुति है।

ओ३म् अग्निषोमाभ्याम् स्वाहा।३। अग्नि और सोम अंश समान मात्रा में बने रहें।

ओ३म् विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा।४। विश्व में व्याप्त सारा जड़–चेतन जगत् मुझे कुछ न कुछ देता है। इसी के लिए ये आहुति है।

ओ३म् धन्वन्तरये स्वाहा।५। धन्व मरूभूमि को कहते हैं, जिस परमात्मा तथा जिन शिल्पकारों की कृपा से मरूभूमि में प्यासा नहीं मरता उनका मैं ऋणी हूँ, इस संकल्प के लिए आहुति है।

ओ३म् कुह्वै स्वाहा।६। कु अर्थात् अनुर्वर (बन्जड़) धरती को

परमेश्वर के परमपद को विद्वान् योगीजन ही देख पाते हैं।
[ऋक् १-२२-२०, सामवेद १६७२]

'है' पुकारने वाली अपनी आज्ञा में चलाकर उससे भी अन्न उत्पन्न करने वाले किसानों की कृषि–विद्या का मैं ऋणी हूँ। इसी विशेषता के स्मरणार्थ यह आहुति है।

ओ३म् अनुमत्यै स्वाहा ।७। नाना शिल्पकारों के साथ लगे हुए हजारों मज़दूरों में यह अन्न और जल मुझे दिया है। यदि उनकी अनुमति के बिना बलपूर्वक उनसे काम लिया जाता तो यह अन्न–जल मुझे ही खा जाता, मैं उन मेहनतकसों का भी ऋणी हूँ। इसी व्रत के लिए ये आहुति है।

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा ।८। सम्पूर्ण प्रजा के पालनहार प्रभु ने अपनी कृपा से हमें प्रेम की शक्ति दी है जिससे ये सब मेरे सहायक बनें।

ओ३म् सह द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ।९। इस भूमि और आकाश के बीच मेरे नाना सहायक होगें जिनका मैं अलग–अलग नाम नहीं ले सकता। इसलिये सब नभचरों तथा थलचरों का मैं विशेष ऋणी हूँ। इनके लिए आहुति है।

ओ३म् स्विष्टकृते स्वाहा ।१०। हम जान बूझकर भी आहार व्यवहार में मर्यादा से न्यून वा अधिक करते रहते हैं। इसीलिये न्यूनाधिक न करने वाले प्रभु की शरण में रहकर उचित नियमानुकूल क्रिया करते रहें। इसी स्विष्टकृत प्रभु की याद में यह आहुति है।

तत्पश्चात् आहुति मात्र से सन्तुष्ट न होकर उनके निमित मंत्रों से अन्न निकालकर पत्तल या थाली में उनका भाग रखना चाहिए।

१. ओ३म् सानुगायेन्द्राय नमः – मैं राजा और चपरासी तक का ऋणी हूँ। इसलिये उनके निमित्त अन्न भाग निकालता हूँ।

२. ओ३म् सानुगाय यमाय नमः – मैं न्यायाधीश और उसके धर्मात्मा अनुचर तक का ऋणी हूँ। दक्षिण दिशा।

ईश्वर प्रणियों के कार्यों को प्रतिपल देखता रहता है। इसी के द्वारा कर्म फल भी वही देता है। [ऋक् १-२२-१९]

३. ओ३म् सानुगाय वरुणाय नमः – पुलिस के अध्यक्ष तथा उसके अनुचरों का भी ऋणी हूँ। इसलिये उनके लिए भी पश्चिम दिशा में।

४. ओ३म् सानुगाय सोमाय नमः – औषध विभाग के अध्यक्ष और उनके अनुचरों का ऋणी हूँ। उनके निमित्त उत्तर दिशा में।

५. ओ३म् मरुद्भ्यो नमः – राष्ट्र के द्वार रक्षक जो सैनिक हैं उनके लिए भी मैं अन्न भाग द्वार पर।

६. ओ३म् अद्भ्यो नमः – नहरों के अध्यक्ष का मैं ऋणी हूँ। उनके निमित्त भी अन्न भाग जल पर।

७. ओ३म् वनस्पतिभ्यो नमः – वन के रक्षक उनका भी ऋणी हूँ। उनके निमित्त भी अन्न ओखली या मूसल पर।

८. ओ३म् श्रियै नमः – राज्य के शिल्पकारों का ऋणी हूँ। उनका भाग ईशान भाग पर।

९. ओ३म् भद्रकाल्यै नमः – जो दण्डनीय लोगों को हमारे और उनके कल्याण के लिये माता के समान हांकती है उसका मैं ऋणी हूँ। उसके लिये नैऋत्य दिशा।

१०. ओ३म् ब्रह्मणे नमः, ११. ओ३म् वास्तुपतये नमः,

१२. ओ३म् विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः –

जिन ब्राह्मणों और शिल्पियों के सहारे यह घर खड़ा किया है। उनके लिये अन्न।

१३. ओ३म् दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः – १४. ओ३म् नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः – दिन रात के पहरेदारों के लिये भी अन्न भाग छत पर।

१५. ओ३म् सर्वात्मभूतये नमः – १६. ओ३म् पितृभ्यः स्वाधायिभ्यः स्वधा नमः – अन्न के अधिकारी जीवित पितरों

घृणा करने वाले और ईर्ष्या करने वाले प्राणी का मन मर जाता है।

[अथर्व० ६-१८-२]

को अपने दाहिनी ओर आदर से बैठाकर भोजन खिलाना पवित्र धर्म है, वे लोग धन्य हैं जो इस प्रकार अपने जीवित माता–पिता और आचार्य की सेवा करते हैं। मनु० ३–८७–९१

इसके अतिरिक्त लवणान्न सहित दाल, भात, रोटी कुत्तों, कंगालों, कुष्ठी आदि रोगियों, काक आदि पक्षियों ओर चींटी आदि कृमियों के लिए छह भाग अलग–अलग करके बाँट देवें।

पंचमः "अतिथि यज्ञ"

अतिथि को खिलाये बिना गृहस्थी कुछ न खाये।

अर्थव० ६–६ सूक्त

जो धार्मिक, परोपकारी, सत्योपदेशक, पक्षपात रहित, शान्त, सर्वहितकारी विद्वान घर में आता है उसकी सेवा करो और विद्या प्राप्त करो। यह अतिथि यज्ञ है। ये पांचों यज्ञ प्रत्येक स्त्री पुरुष को करने चाहियें।

"पंचमहायज्ञों का सार"

ब्रह्मयज्ञ से प्रभु के गुणों को, देवयज्ञ से समाज के प्रति कर्त्तव्य पालन को, पितृयज्ञ से कृतज्ञता पालन को, वैश्वदेवयज्ञ द्वारा निरभिमान होकर और अतिथियज्ञ द्वारा सब विद्वानों की सेवा करो। अर्थव० १५–११–१, २

प्रभु भक्त को कोई दबा नहीं सकता "स अदब्धः"
[ऋक् २-२८-९, तैत्तिरीय ब्रा० ३-७-९, अथर्व० ६-११७-३, शत० ७-२]

उत्तम पुरूष की सङ्गति से मनुष्य का हृदय उदार होता हैं।
[अथर्व० १०-८-१५]

ऐश्वर्य सुख के दच्छुक आर्य-पुत्रो! उठो-वेद प्रचार करो। सरस्वती नाम परमेश्वर की अनन्त वाणी वेदविद्या का नाम है। [ऋक् १-४०-१]

बैठे हुए का ऐश्वर्य बैठ जाता है, आलसी का ऐश्वर्य सो जाता है, चलने वाले पुरूषार्थी का ऐश्वर्य पीछे-पीछे चलता रहता है।
[ऐतरेय ब्राह्मण ३३-३]

संकल्प मंत्र

ओ३म् अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तम्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि। यजु० १–५

भावार्थ – हे व्रतपति परमेश्वर! हम अपनी वाणी से भी सत्य व्रत तथा धर्म का पालन करें। जिससे विद्वानों की संगति और आत्म शुद्धि से सबके हित का पालन करने में तत्पर रहें। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि इस यज्ञ का यजमान बनकर यज्ञ विद्या का पालन करूगां और आप की शरण में रहकर अपने जीवन और समाज का उत्थान करता रहूँगा।

भोजन के समय पढ़ने का मन्त्र

ओ३म् अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्र प्र दातारं तारिषत् ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदेः॥

यजु० ११–८३

हे प्रभु! आप मुझे और सभी द्विपादों, चतुष्पादों और कृमि कीटों सभी को समय पर भोजन देकर कृतार्थ कीजिये।

भोजन के बाद पठनीय मन्त्र

ओ३म् मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य। नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघोभवति

ऋ० १०–११७–६

मूर्ख व्यक्ति अन्न को व्यर्थ ही प्राप्त करता है। वह उसका वध करने वाला ही होता है। क्योंकि खाने वाला न तो राजा का पालन करता है ओर न किसी बन्धु का पालन करता है। इसलिये वह अकेला ही खाकर पाप का भागी होता है।

अकेला खाने वाला पाप खाता है।
[केवलाघो भवति केवलादी-ऋक् १०-११७-६]

वामदेवगान

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृढ़ा चिदा रूजे वसु।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। अभीषुणः सखीनामविता जरितृणाम् शतं भवास्यूतये। यजु० २७–३६, ४०, ४१

भावार्थ :– पूर्ण आहुति के बाद शान्त्यर्थ द्वामवेदोक्त महा वामदेव्य गान गाना चाहिए और यज्ञ की समाप्ति पर सभी स्त्री पुरुष ओ३म् स्वस्ति, ओ३म् स्वस्ति, ओ३म् स्वस्ति यजमान को यह आशीर्वाद तीन चावल या तीन पुष्प उड़ेलते हुए ही यज्ञ स्थल को छोड़ें। गोभिल गृ० सू०

मंगल–कामना

ओ३म् सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

सबका भला करो भगवान्, सब पर दया करो भगवान्।
सब पर कृपा करो भगवान्, सबका विध हो कल्याण॥

हे ईश ! सब सुखी हों कोई न हो दुःखारी।
सब हों निरोग भगवन्, धन धान्य के भण्डारी॥
सब भद्र भाव देखें, सन्मार्ग के पथिक हों।
दुःखिया न कोई होवे, सृष्टि में प्राणधारी॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥

मुक्ति के बाद जीव फिर संसार में आता है।
[ऋक् १-२४-२, ऋक् १०-६२-१से४]

आचमन तीन करने चाहिएं **'त्रिराचमेत्'**– बोधायन धर्मसूत्र ४–७–३
महर्षि दयानन्द जी ने भी संध्या के प्रारम्भ मे, हवन के प्रारम्भ मे, विवाह मे तीन–तीन आचमनों का विधान किया है।
पूर्णआहुति भी तीन ही दी जाती है।
गोभि० गृ० सू० १–८–२६ / शत० ब्राह्मण
यजमान को आशीर्वाद भी तीन ही दिये जाते हैं।
यजु० २–१०, १२–४४, अथर्व १६–४२–३, १२–५८ यजु०।
सामग्री के चार प्रकार हैं यजु० १६–२१– (पुष्टिकारक) : घी, दूध, फल कन्द, अन्न, चावल, जों आदि। (मिष्ट गुणयुक्त) : शक्कर, शहद, छुवारे, दाख आदि। (सुगन्धी गुणयुक्त) : कस्तूरी, केसर, अगर, तगर, श्वेतचन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री आदि। (स्वस्थ गुणयुक्त) : सोमलता, गिलोय आदि।

किस कर्म या लाभ के लिये किस हवि द्रव्य से होम करना चाहिये ?

१. शान्ति कर्म के लिये – दूध, घी, पिप्पलादि, गिलोय के पत्तों से होम करें।
२. पुष्टि कर्म के लिये – बिल्व (बेल) पत्र, घृत, चमेली के फूल से होम करें।
३. समृद्धि के लिये – दही अथवा घृत से होम करें।
४. आयुर्वृद्धि के लिये – घृत, तिल, दुर्वा, आम्र के पत्तों से होम करें।
५. ज्वर दूर करने के लिये – आम्रपत्तों से होम करें।
६. मृत्युंजय के लिये – गिलोय से होम करें।
७. गौ–रोग की शान्ति के लिये – सफेद सरसों से होम करें।
८. वृष्टि (वर्षा) के लिये – बेन्त की समिधा ओर उसी के पत्तों से होम करें।

परमेश्वर जीवात्मा का घर-आश्रय-कवच और ढाल है। वह अपने पुत्र जीव की सदा रक्षा करता रहता है। [अथर्व० ५-६-११]

६. वृष्टि रोकने के लिये – दूध ओर लवण द्वारा होम करें।

विशेष : कुशा और दूर्वा घास की उत्पत्ति अथर्ववेद १६–३०–५ में वर्णित है। (याजिक आचार संहिता पृष्ठ ६०)

यजिय वृक्ष :

पलाश, फल्गु, न्यग्रोध् (बड़), प्लक्ष (पिलखन), अश्वत्थ (पिप्पल), विकंकत (बंज), उदुम्बर (गूलर), बिल्व (बेल), चन्दन, सरल, देवदारू, शाल, खदिर (खैर) ये वृक्ष यज्ञिय वृक्ष कहाते हैं। 'आन्हिक सूत्रावली'।

समिधाओं के गुण : १. (आर्की)– व्याधि का नाश करती है। (पलाशी) (ढाक) इच्छा पूरी करती है। (खादिरी) ऐश्वर्य देती है। (अपामार्गी) इष्ट बढ़ाती है महर्षि ने भी संस्कार विधि में चन्दन, पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आम, बिल्व आदि वृक्ष की समिधा उत्तम लिखी हैं। (दर्भ ओर कुशा) परम रक्षक और कामना पूरी करती है। (पलाश) वृक्ष को ब्राह्मण वृक्ष कहा है। इसी लिये ब्राह्मण को परोपकार में अपना जीवन अर्पित कर देना लिखा है। अथर्व० २०–१३६–१५ मंत्र में (गूलर और बिल्व वृक्ष) की उपमा महापुरुषों से की है। इनसे यज्ञ ओषधि तथा ऊर्जा सम्पन्न होकर द्युलोक में ठहरता है।

१. विकंकत, वंज, किंकिणी को कण्टाई भी कहा है जो चिकना और शक्तिमान् होता है। शत० ६–६–१

२. काश्मर्य, खम्बारी, श्रीपर्ण, कीटाणु नाशक होता है। शत० ३–४–१–१६

३. बिल्व मज्जा के समान चिकना और पुष्टिकारक होता है। शत० १२–४–१–८

४. खदिर बड़ा कठोर ओर सारवान् होता है। शत० १३–४–४–६

५. गूलर शक्ति सम्पन्न, रसमय, सूर्यवत् ऊर्जा सम्पन्न होता है। शत० १३–४–४–६

परमेश्वर ने ग्रीवा के ऊपर ७[सात] ऋषि [२ चक्षु–२ कान–१जिह्वा] बैठा रक्खे हैं– जो ब्राह्य सृष्टि का ज्ञान आत्मा को देते रहते हें।

[ऋक् १-९३-२, सप्तर्षय: ऋक् १०-१०९-४]

६. अग्नि इन सब वृक्षों की समिधाओं को आगे ले जाने वाला होता है। इसीलिये अग्नि को हव्यवाट् कहते हैं।

विशेष : यजमान के भाव दृढ़ प्रतिज्ञ और पवित्र होने चाहियें क्योंकि वह यज्ञ के द्वारा परमेश्वर से मिलना चाहता है। उसे यज्ञ से पहली रात्रि में उपवास रखना चाहिये अर्थात देवों के निकट बैठ जाना चाहिये तभी उसका यज्ञ सफल रहता है।

यजमान को 'हव्यवाट्' अग्नि के समान यज्ञ में दी आहुतियों को देवों तक ले जाने वाला तथा 'रथीध्वर'– (यज्ञ के रथ को द्युलोक में ले जाने वाला) कहा है। वह चाहता है ऋत्विज्, पुरोहित मेरे यज्ञ में कोई कमजोरी या छेद ना आने दें। यजु० २–८ / शत० ४–५

अध्वर्यु :– उसके यज्ञ का कुशल प्रबन्धक होता है जैसे सूर्य ब्रह्माण्ड का अध्वर्यु होकर सारे ब्रह्माण्ड को आकर्षण से धारण किये रहता है।

होता : – उसके यज्ञ का विशेषज्ञ होता है।

उदगाता :– यज्ञ को सरस, गान विद्या से संगीतमय बनाकर यजमान के चित्त को शान्त रखता है।

ब्रह्मा :– सब विद्याओं का ज्ञाता, विद्वान् पण्डित, उसका कार्य सब ऋत्विज् व पुरोहितों का निरीक्षण करना है। वह 'चतुर्वेदविद्' (चारों वेदों का ज्ञाता) होता है।

यज्ञ के मुख्य रूप से ५ पद हैं :–

१. यजमान– संकल्प कर्त्ता ––– ओ३म् का प्रतीक है।
२. अध्वर्यु – प्रयत्नशील कुशल प्रबन्धक – भुवः का प्रतीक है।
३. होता– पूर्णज्ञानी विषय विशेषज्ञ –– भूः का प्रतीक है।
४. उदगाता– अनुभूतिशील गन्धर्वगानों का मधुर गायक – स्वः का प्रतीक है।
५. ब्रह्मा – इन सब पुरोहितों, ऋत्विजों, होताओं का सूक्ष्म निरीक्षक तथा यजमान के यज्ञ का सफलतम सारथि–रक्षक होता है। शत० ब्रा० ४–२

यज्ञ में वेदवाणी (मंत्रों) को छोड़कर अपनी भाषा या वाणी का प्रयोग करें तो प्रायश्चित करना चाहिये। **[यजु० ५-४१, उरू विष्णोः]**

भजन संग्रह

भजन १

यज्ञ प्रार्थना

यज्ञ रूप प्रभो हमारे भाव उज्जवल कीजिये।
छोड़ देवें छल कपट को मानसिक बल दीजिये॥
वेद की बोलें ऋचायें सत्य को–धारण करें।
हर्ष में हो मग्न सारे शोक सागर से तरें॥
अश्वमेधादिक रचायें यज्ञ पर उपकार को।
धर्म मर्यादा चलाकर लाभ दें संसार को॥
नित्य श्रद्धा भक्ति से यज्ञादि हम करते रहें।
रोग पीड़ित विश्व के संताप सब हरते रहें॥
भावना मिट जाये मन से पाप अत्याचार की।
कामनायें पूर्ण होवें यज्ञ से नर–नार की॥
लाभकारी हो हवन हर प्राणधारी के लिये।
वायु जल सर्वत्र हों शुभ–गन्ध को धारण किये॥
स्वार्थ भाव मिटे हमारा प्रेम पथ विस्तार हो।
इदन्नमम् का सार्थक प्रत्येक में व्यवहार हो॥
प्रेम रस से तृप्त होकर वन्दना हम कर रहे।
नाथ करूणा रूप करूणा आपकी सब पर रहे॥

भजन २

सुखी बसे संसार सब दुखिया रहे न कोय।
यह अभिलाषा भक्त की भगवन् पूरी होय ॥१॥
विद्या बुद्धि तेज बल सबके भीतर होय।
दूध पूत धन धान्य से वंचित रहे न कोय ॥२॥
आपकी भक्ति प्रेम से मन होवे भरपूर।
राग द्वेष से चित्त मेरा कोसों भागे दूर ॥३॥
मिले भरोसा आपका का हमें सदा जगदीश।
आशा तेरे नाम की बनी रहे मम ईश ॥४॥
हमें बचाओ पाप से करके दया दयाल।
अपना भक्त बनाकर हमको करो निहाल ॥५॥
दिल में दया उदारता मन में प्रेम अपार।
चित्त में धीरज वीरता सब को दो करतार ॥६॥
हाथ जोड़ विनती करूं सुनिये कृपा निधान।
साधु–संग सुख दीजिए दया नम्रता दान ॥७॥

विद्वानों के अभाव में महर्षि दयानन्द सरस्वती स्वयं अनेक स्थानों पर अग्निहोत्र और यज्ञोपवीत (उपनयन संस्कार करते कराते रहे हैं। यदि वहां विद्वान् सुलभ हैं तो संन्यासी का तटस्थ रहना ही अच्छा है। [याजिक आचार संहिता पृष्ठ २४२]

भजन ४

इस कुल का यह दीपक प्यारा, बालक आयुष्मान् हो।
तेजस्वी, वर्चस्वी, निर्भय, सर्वोत्तम विद्वान हो॥१॥
बने सुमन सा कोमल सुन्दर, दानी बनकर दान करें,
दुष्टों से न डरे कभी यह, श्रेष्ठों का सम्मान करे।
मानव धर्म समझकर चलने वाला चतुर सुजान हो॥२॥
विजय चौतरफा जय हो इसकी, पाये सुख सम्मान भी।
शत आयु से अधिक हो जीवन, करे धर्म हित दान भी,
नेता बने यह देश अपने का, जग भर में सम्मान हो॥३॥
परमभक्त बन परम प्रभु का, अपना यश फैलाये यह।
माता पिता की सेवा करके, सच्चा सेवक कहलाये यह।
नाम अमर करे जग में अपना, सर्वगुणों की खान हो॥४॥

भजन ५

दया कर दान भक्ति का, हमें परमात्मा देना।
दया करना हमारी, आत्मा में शुद्धता देना॥
हमारे ध्यान में आओ, प्रभु आँखो में बस जाओ।
अंधेरे दिल में आकर, परम ज्योति जला देना॥ दया...
बहा दो प्रेम की गंगा, दिलों में प्रेम का सागर।
हमें आपस में मिल जुलकर, प्रभु रहना सिखा देना॥ दया...
हमारा धर्म हो सेवा, हमारा कर्म हो सेवा।
सदा ईमान हो सेवा, सफल जीवन बना देना॥ दया...
वतन के वास्ते जीना, वतन के वास्ते मरना।
वतन पर जां फिदा करना, प्रभु हमको सिखा देना॥ दया...

जो स्वयं वेद आदि समस्त विद्याओं में पारङ्गत विद्वान् है वह ऋषि है। आर्षेय [ऋषिपुत्र] है। [शतपथ ४-३-४-१९]

भजन ६

महर्षि दयानन्द गुणगान

दयानन्द देव वेदों का, उजाला लेके आये थे।
करों में ओ३म् की पावन, पताका लेके आये थे टेक॥
न थे धन धाम मठ मन्दिर, न संग चेली न चेला था।
हृदय में यह अटल विश्वास, प्रभु का लेके आये थे॥१॥
गौ, विधवा दलित दुखिया, अनाथों दीन जन के हित।
नयन में अश्रु–कण मानस, में करुणा लेके आये थे॥२॥
अविद्या–सिन्धु से अगणित, जनों के पार करने को।
परम सुखदायिनी सद्ज्ञान, नौका लेके आये थे॥३॥
कोई माने न माने सच, तो यह ऋषिराज ही पहले।
स्वराज स्थापना का मन्त्र, सच्चा लेके आये थे॥४॥
पिलाया जहर का प्याला, उन्हीं नादान लोगों ने।
कि वह जिनके लिए अमृत का, प्याला लेके आये थे॥५॥
"**प्रकाश**" आदर्श शिक्षा का, पुनः विस्तार करने को।
वही प्राचीन गुरुकुल का, सन्देशा लेके आये थे॥६॥

भजन ७

आर्यवीर गान

दयानन्द के वीर सैनिक बनेंगे। दयानन्द का काम पूरा करेंगे
उठाये ध्वजा धर्म की फिरेंगे। इसी के लिए हम जियेंगे मरेंगे
गुंजायेंगे वेदों को हम गीत गाकर। दिखायेंगे दुनिया पुरानी बनाकर
उठायेंगे ऋषियों की आवाज को हम। बनायेंगे फिर स्वर्ग संसार को हम
मिटायेंगे सब सम्प्रदायों के मत को। बनायेंगे फिर आर्य सारे जगत् को
पढ़ें वेद विद्या गुरुकुल में जाकर। दिखायेंगे जीवन को सादा बनाकर
वही प्रेम गख यहां फिर बहेगी। जो संसार का दुःख सारा हरेगी
कहेगा जगत् फिर से इक स्वर में सारा। वही वृद्ध भारत गुरु है हमारा

स्वावलम्बन से व्यक्ति द्युलोक-अन्तरिक्ष और पृथ्वी से भी ऊपर उठ जाता है।
[अथर्व॰ "आद्यांरोहन्ति रोदसी" , यजु॰ २३-१५]

भजन ७

ओ३म् ध्वज गीत

जयति ओ३म् ध्वज व्योम–विहारी। विश्व–प्रेम–प्रतिमा अति प्यारी
सत्य–सुधा बरसाने वाला, स्नेह–लता सरसाने वाला।
सौम्य–सुमन विकसाने वाला, विश्व विमोहक भव–भय–हारी॥१॥
इसके नीचे बढ़ें अभय मन, सत्पथ पर सब धर्म–धुरी–जन।
वैदिक रवि का हो शुभ उदयन, आलोकित होवें दिशि सारी॥२॥
इससे सारे क्लेश शमन हों, दुर्मति–दानव द्वेष दमन हों।
अति उज्जवल अति पावन मन हो, प्रेम–तंरग बहे सुखकारी॥३॥
इसी ध्वजा के नीचे आकर, ऊंच–नीच का भेद भुलाकर।
मिले विश्व मुद मंगल गाकर, पन्थाई पाखण्ड बिसारी॥४॥
इस ध्वज को हम लेकर कर में, भर दें वेद–ज्ञान घर–घर में।
सुभग शान्ति फैले घर–घर में, मिटे अविद्या की अंधियारी॥५॥
आर्यजाति का सुयश अक्षय हो, आर्य ध्वजा की अविचल जय हो।
आर्यजनों का ध्रुव निश्चय हो, आर्य बनायें वसुधा सारी॥६॥

भजन ८

वन्दे मातरम्

वन्दे मातरम्! वन्दे मातरम्!
सुजलां सुफलां मलयजशीतलां
शस्य–श्यामलां मातरम् वन्दे मातरम्
शुभ्र–ज्योत्स्नां पुलकित–यामिनीं
फुल्ल–कुसुमित–द्रुमदल–शोभिनीम्,
सुहासिनीं–सुमधुर–भाषिणीं
सुखदां वरदां मातरम् वन्दे मातरम्

परमेश्वर विश्व की कामधेनु है जो जीव की सब कामनाएं पूरी करता है।
[अथर्व० ४-३४-८]

भजन ९

ईश्वर भक्ति के भजन

ओ३म् है जीवन हमारा, ओ३म् प्राणाधार है।
ओ३म् है कर्ता विधाता, ओ३म् पालनहार है॥
ओ३म् है दुःख का विनाशक, ओ३म् सर्वानन्द है।
ओ३म् है बल तेजधारी, ओ३म् करुणाकन्द है॥
ओ३म् सबका पूज्य है, हम ओ३म् का पूजन करें।
ओ३म् ही के ध्यान में हम शुद्ध अपना मन करें॥
ओ३म् का गुरु मन्त्र जपने से रहेगा शुद्ध मन।
बुद्धि दिन प्रतिदिन बढ़ेगी धर्म में होगी लगन॥
ओ३म् जपने से हमारा ज्ञान बढ़ता जायेगा।
अन्त में यह ज्ञान हमको मुक्ति तक पहुंचायेगा॥

भजन १०

सत्ता तुम्हारी भगवन्, जग में समा रही है।
तेरी दया–सुगन्धि, हर गुल से आ रही है॥
रवि, चन्द्र और तारे, तूने बनाये सारे।
इन सब में ज्योति तेरी, इक जगमगा रही है॥१॥
विस्तृत वसुन्धरा पर, सागर बहाये तूने।
तह जिनकी मोतियों से, अब चमचमा रही है॥२॥
दिन रात प्रातः सन्ध्या, मध्याह्न भी बनाया।
हर ;तु पलट–पलट कर, करतब दिखा रही है॥३॥
सुन्दर सुगन्ध वाले, फूलों में रंग तेरा।
यह ध्यान फूल–पत्ती, तेरा दिला रही है॥४॥
हे ब्रह्म विश्वकर्ता! वर्णन हो तेरा कैसे?
जल–थल में तेरी महिमा, हे ईश छा रही है॥५॥

स्त्री जाति को गृह-उद्योग कर्म में कुशल होना चाहिये।
[शतपथ ब्राह्मण १२-७-२-२२]

भजन ११

सुखी बसे संसार सब दुखिया रहे न कोय।
यह अभिलाषा भक्त की भगवन् पूरी होय॥१॥
विद्या बुद्धि तेज बल सबके भीतर होय।
दूध पूत धन धान्य से वंचित रहे न कोय॥२॥
आपकी भक्ति प्रेम से मन होवे भरपूर।
राग द्वेष से चित्त मेरा कोसों भागे दूर॥३॥
मिले भरोसा नाम का हमें सदा जगदीश।
आशा तेरे नाम की बनी रहे मम ईश॥४॥
हमें बचाओ पाप से करके दया दयाल।
अपना भक्त बना कर हमको करो निहाल॥५॥
दिल में दया उदारता मन में प्रेम अपार।
चित्त में धीरज वीरता सब को दो करतार॥६॥
हाथ जोड़ विनती करूं सुनिये पा निधान।
साधु–संग सुख दीजिए दया नम्रता दान॥७॥

भजन १२

धन्य है तुझको ऐ ऋषि! तूने हमें बचा दिया।
सो–सो के लुट रहे थे हम, तूने हमें जगा दिया॥
अन्धों को आँख मिल गई, मुर्दों में जान आ गई।
जादू–सा क्या चला दिया, अमृत–सा क्या पिला दिया॥ धन्य...
ऐसी क्या तासीर थी, तेरे वचन में ऐ ऋषि।
कितने शहीद हो गये, कितनों ने सिर कटा दिया॥ धन्य...
अपने लहू से लेखराम, तेरी कहानी लिख गया।
तूने ही लाला लाजपत, शेरे बब्बर बना दिया॥ धन्य...
श्रद्धा से श्रद्धानन्द ने, सीने प खाई गालियाँ।
हंस हंस के हंसराज ने, तन मन व धन लुटा दिया॥ धन्य...
तेरे दिवाने जिस घड़ी, दक्षिण दिशा को चल दिये।
वैदिक धर्म पे हो फिदा, दुनिया का दिल दहला दिया॥ धन्य...

अग्निना अग्निः समिध्यते =ज्योति से ज्योति प्रकाशित होती है।
[ऋक् १-२२-३, ८४४ सामवेद]

आरती

ओ३म् जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे।
भक्त जनों के संकट, क्षण में दूर करे॥१॥
जो ध्यावे फल पावे, दु:ख विनशे मन का।
सुख सम्पत्ति घर आवे, कष्ट मिटे तन का॥२॥
मात पिता तुम मेरे, शरण गहूँ मैं किसकी।
तुम बिन और न दूजा, आस करूं जिसकी॥३॥
तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तर्यामी।
पार ब्रह्म परमेश्वर तुम सब के स्वामी॥४॥
तुम करुणा के सागर, तुम पालककर्त्ता।
मैं सेवक तुम स्वामी पार करो भर्त्ता॥५॥
तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपति।
किस विधि मिलूं दयामय तुमको मैं कुमति॥६॥
दीनबंधु दु:ख हर्त्ता, तुम रक्षक मेरे।
करुणा हस्त बढ़ाओ, शरण पड़ा तेरे॥७॥
विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा।
श्रद्धा भक्ति बढ़ओ, सन्तन की सेवा॥८॥

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।

सदा शक्ति सरसाने वाला,
प्रेम सुधा बरसाने वाला।
वीरों को हर्षाने वाला,
मातृभूमि का तन–मन सारा

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।

आओ प्यारे वीरों आओ,
देश–धर्म पर बली–बली जाओ।
एक साथ सब मिलकर गाओ,
प्यारा भारत देश हमारा

"पावका: न: सरस्वती" वेद विद्या सबको पवित्र करती है।
[ऋग्वेद १-३-१०]

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।

शान ना इसकी जाने पाये,
चाहे जान भले ही जाये।
सत्य की विजय कर दिखलायें,
तब होवे प्राण पूर्ण हमारा

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।

भजन १३

ओ३म् नाम के हीरे मोती, मैं बिखराऊँ गली–गली।
ले लो रे कोई ओ३म् का प्यार, आवाज लगाऊँ गली–गली॥
माया के दीवानों सुन लो, इक दिन ऐसा आयेगा।
धन दौलत और रूप खजाना, धरा यहीं रह जायेगा॥
सुन्दर काया माटी होगी, चर्चा होगी गली–गली॥ ले लो...
मित्र प्यारे सगे सम्बन्धी, इक दिन तुझे भुलायेंगे।
कल जो कहते थे अपना, अग्नि में तुझे जलायेंगे।
दो दिन का यह चमन खिला है, फिर मुरझाये कली–कली॥ ले लो...
क्यों करता है मेरी मेरी, तज दे इस अभिमान को।
छोड़ जगत के झूठे धन्धे, जप ले प्रभु के नाम को।
गया समय फिर हाथ न आये, तब पछताये घड़ी–घड़ी॥ ले लो...
जिसको अपना कह कह करके, मुर्ख तू इतराता है।
छोड़ दें बन्दे साथ विपद में, साथ नही कोई जाता है।
दो दिन का यह रैन बसेरा, आखिर होगी चलो चली॥ ले लो...

जो जानता है- वही पाता है। **[ऋक् १-२५-८, अथर्व० १३-३-८]**

हे दयामय ! हम सबों को

हे दयामय! हम सबों को शुद्धताई दीजिये।
दूर करके हर बुराई को भलाई दीजिये। टेक।
ऐसी कृपा और अनुग्रह हम पै हो परमात्मा।
हों सभासद् इस सभा के सब के सब धर्मात्मा॥१॥
हो उजाला सबके मन में ज्ञान के प्रकाश से।
और अन्धेरा दूर सारा हो अविद्या नाश से॥२॥
खोटे कर्मो से बचें और तेरे गुण गावें सभी।
छूट जावें दुःख सारे सुख सदा पावें सभी॥३॥
सारी विद्याओं को सीखें ज्ञान से भरपूर हों।
शुभ कर्म में होवें तत्पर दुष्ट गुण सब दूर हों॥४॥
यज्ञ–हवन से हो सुगन्धित अपना भारतवर्ष देश।
वायु जल सुखदायी होवें जायें मिट सारे क्लेश॥५॥
वेद के प्रचार में होवें सभी पुरुषार्थी।
होवे आपस में प्रीति और बनें परमार्थी॥६॥
लोभी, कामी और क्रोधी कोई भी हम में न हो।
सर्व व्यसनों से बचें और छोड़ देवें मोह को॥७॥
अच्छी संगत में रहें और वेद मार्ग पर चलें।
तेरे ही होवें उपासक और कुकर्मो से बचें॥८॥
कीजिये हम सबका हृदय शुद्ध अपने ज्ञान से।
मान भक्तों में बढ़ाओ सबका भक्ति दान से॥६॥

भजन १४

दया कर दान भक्ति का, हमें परमात्मा देना।
दया करना हमारी आत्मा में शुद्धता देना

बहा दो प्रेम की गंगा, दिलों में प्रेम का सागर।
हमें आपस में मिल–जुलकर, प्रभु रहना सिखा देना

हमारा कर्म हो सेवा, हमारा धर्म हो सेवा।
सदा ईमान हो सेवा, और सेवक चर बना देना

हमारे ध्यान में आओ, प्रभु आँखों में बस जाओ।
अंधेरे दिल में आकर के, परम ज्योति जगा देना

महात्माओं का तेज सब और फैलता है। [ऋक् १-३६-३]

कोई कारण होगा

इक झोली में फूल भरे हैं, इक झोली में कांटे,
अरे कोई कारण होगा?
तेरे बस में कुछ भी नहीं, ये तो बांटने वाला बांटे,
अरे कोई कारण होगा?
पहले बनती हैं, तकदीरें, फिर बनते हैं शरीर,
ये प्रभु की कारीगरी है, तू है क्यों गम्भीर॥
अरे कोई कारण होगा?
नाग भी डस ले तो मिल जाये, किसी को जीवन दान।
चींटी से भी मिट सकता है, किसी का नामो निशान॥
अरे कोई कारण होगा?
धन का बिस्तर मिल जाये पर, नींद को तरसैं नैन।
कांटों पर सोकर भी आये, किसी के मन को चैन॥
अरे कोई कारण होगा?
सागर से भी बुझ सकती नहीं, कभी किसी की प्यास,
कभी एक ही बून्द से हो जाती पूर्ण आस।
जैसा तूने बीज है बोया, फल वैसा ही काटे॥
अरे कोई कारण होगा?

[आशीर्वाद]

यजमान हेतु आचार्य द्वारा आशीर्वाद तथा पुष्पवर्षा अन्यों के द्वारा भी :

आयुष्मान वर्चस्वी तेजस्वी दीर्घायुः धनधान्येन संपन्न ईश्वर भक्त देशभक्त भूयात् शुभंभवतु !

ओ३म् सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः। ओ३म् सौभाग्यमस्तु। ओ३म् शुभं भवतु ॥ ओ३म् स्वस्ति। ओ३म् स्वस्ति। ओ३म् स्वस्ति।

ऋत्विक् ब्रह्मा को मौन रहकर गम्भीरता के साथ याज्ञिक क्रियाओं का गहन निरीक्षण करते रहना है। [यजु० २३-२५ "ब्रह्मन्मा वदो बहु", शत० १-७-४-९ स वै वाचंयम एव स्यात्", गृह सूत्र-ब्रह्मा उदङ्मुखस्तूष्णीमास्ते आहोयात्। याजिक आचार संहिता पृष्ठ २२६]

बालक को आशीर्वाद

हे बालक ! त्वम् आयुष्मान वर्चस्वी–तेजस्वी परोपकारी भूयाः॥

वैदिक उदघोष

१. महर्षि दयानन्द सरस्वती की जय।
२. गुरूवर विरजानन्द की जय।
३. मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम की जय।
४. योगेश्वर श्री कृष्ण की जय।
५. देश के शहीद अमर रहे।
६. गऊ माता की जय।
७. हिन्दी भाषा की जय।
८. देववाणी संस्कृत भाषा की जय।
६. ओ३म् का झण्डा ऊँचा रहे।
१०. आर्य समाज अमर रहे।
११. भारत माता की जय।
१२. वैदिक ध्वनि, ओ३म्।
१३. वैदिक अभिवादन सबको नमस्ते।

परमेश्वर का उपदेश है कि : लक्षाधिक पदार्थों की शुद्धि करने वाले यज्ञ से सूर्य-जल-अग्नि, वायु और विद्युत् के संग्राम वेग को जानो। अग्नि ऊपर और जल नीचे बहता है। यज्ञ में दोनों के लौट-पौट (उथल-पुथल) हो जाने से हजारों गुना दाहगुण वाली हविष्मती ऊर्जाओं का आधार गुण उत्पन्न हो जाता है, जिससे वृष्टि (वर्षा) तो होती ही है, समस्त ब्रह्माण्ड भी हविष्मान् (सुगन्धित और शक्तिमान्) होकर सूर्य की हानि पहुंचाने वाली पराबैंगनी किरणों को नीचे आने से रोकने वाला रक्षा-कवच (ओजोन परत) भी है जो भूमण्डल की रक्षा करता रहता है जिससे जीव मात्र सुरक्षित रहता है। "निम्नं न रीयते" ऋक् १–३०–२, ऋक् ४–४६–१
ऋक् १०–४५–६, अर्थव० २–३२–३
अर्थव० ३–२१–१०, यजु० ६–२३

विज्ञानं यज्ञं तनुते तैति0 उपनिषद् यज्ञ विज्ञान को बढ़ाता है। उत्पन्न करता है।

["वेदवाणीं वैश्वदेवीम्" अथर्व वेद १२-२-२८]

वेद सब सत्य विद्या का भण्डार है।